श्री सद्गुरु चरितामृत
श्री सीतारामजी
लेखक—
रामयत्न शरण

के ठीक बाद ही उत्तर प्रदेश के भटवाँ ग्राम में श्री नाम नवाह तथा श्री सीताराम विवाह उत्सव का कार्यक्रम सम्पन्न करने के लिये समाज के साथ हमारे चरित्रनायक वहाँ पधारे। आते ही श्री नाम नवाह आरम्भ कर दिया गया। भटवाँ में श्री विवाह तथा कलेवा उत्सव की तिथि के अवसर पर ही छपरा जिले के सरेयाँ आश्रम पर श्री अष्टयाम नाम जप तथा श्री रामार्चा पूजन का कार्यक्रम पूर्व में ही निश्चित हो चुका था। भटवाँ का कार्यक्रम निश्चित करने के समय हमारे चरित्रनायक को सरेयाँ के कार्यक्रम की बात याद ही नहीं रही। भटवाँ में नाम नवाह आरम्भ होने के बाद ही, सरेयाँ के लोग हमारे चरित्रनायक को खोजते हुए वहाँ आ पहुँचे। लाचार होकर हमारे चरित्रनायक ने श्री भरतलाल शरणजी से कहा कि श्री विवाह उत्सव के दिन आठों स्वरूप सरकार का शृंगार कर तुम बारात निकाल देना। मैं विवाह के अवसर पर आ जाऊँगा। प्रस्थान कर वे सरेयाँ आश्रम में, श्री नाम नवाह की पूर्ति के बाद, आ गये और यहाँ अष्टयाम नाम जप चालू करा दिया। भटवाँ में श्री विवाह कलेवा उत्सव के अवसर पर हमारे चरित्रनायक भटवाँ में पाये गये और इन्हीं दो दिनों में श्री अष्टयाम नाम जप और श्री रामार्चा पूजन के अवसर पर सरेयाँ भी रहे। श्री भरत लाल शरण को इस बात की पुष्टि पीछे सरेयाँ के लोगों से मिलने पर हो गयी। इस प्रकार—'यहाँ वहाँ दोऊ बालक देखा' का भाव हमारे चरित्रनायक के सम्बन्ध में चरितार्थ हुआ।

(२) श्री सीतावल्लभ शरण जी महाराज ने जो अभी भी श्री अवध वास कर रहे हैं, श्री विवहुती भवन में भी लगभग तीस साल निवास हमारे चरित्रनायक के जीवन काल में ही किया था। उनकी माता, बहन तथा परिवार के अन्त लोग हमारे चरित्रनायक के ही कृपा पात्र हैं। श्री सीतावल्लभ शरण जी की भी हमारे चरित्रनायक के प्रति गुरुवत् भावना रही है। उनके द्वारा बतलायी गयी घटनाओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

(क) मात्र तीन मन भोजन सामान में पन्द्रह सौ लोगों ने भोजन किया—अपनी जन्म-भूमि ग्राम भतुसेरी, जहानाबाद, जिला गया, में एक श्रीराम विवाह उत्सव कराने की उन्हें उत्कट अभिलाषा हुई। पारिवारिक दीनता के कारण हमारे चरित्रनायक से कहने में उन्हें संकोच-सा हो रहा था। अतएव, उन्होंने अपनी माताजी के द्वारा अनुरोध कराया, जिसे हमारे चरित्रनायक ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और अगहण पूर्णिमा की तिथि श्री विवाह उत्सव के लिये निश्चित की गई। श्री विवाह उत्सव का प्रचार सुदूर क्षेत्रों तक हो जाने के कारण निर्धारित तिथि के एक सप्ताह पूर्व से ही सन्त महात्माओं की टोली वहाँ आने लग गयी और आगन्तुकों में हित-कुटुम्ब की संख्या भी बढ़ती ही गयी। श्री सीता वल्लभ शरण जी के घर में मात्र एक मन चावल, आधा मन दाल और थोड़े अन्य सामान उपलब्ध थे। हाटी हाई स्कूल के हेडमास्टर श्री यमुना प्रसाद सिंह जी ने भी शायद इन्हें दो मन आटा और दस सेर तेल का दाम उत्सव के अवसर पर दिया। सन्त–अभ्यागत–सेवा तो एक सप्ताह से चलती ही रही, पर, परिवार के लोगों में यह चिन्ता व्याप्त हो गयी कि इतने थोड़े सामान से अभ्यागत–स्वागत तथा श्री विवाह कलेवा उत्सव कैसे सम्पन्न हो सकेगा ? हमारे चरित्रनायक भी बारह मूर्ति के साथ श्री अवध से आ पहुँचे। उनके आते ही सभी लोग व्यवस्था में इतने तल्लीन हो गये कि आगे और कुछ सोचने का अवसर ही नहीं रहा। श्री विवाह-कलेवा उत्सव आनन्दमय वातावरण में सम्पन्न हुआ। और लगभग डेढ़ हजार लोगों ने प्रसाद पाया। किसी प्रकार की कमी का अनुभव नहीं हुआ। यह घटना शायद सन् १९४० ई० की बतलायी जाती है।

(ख) एक शिष्या की करुण पुकार पर चरित्रनायक द्वारा अँधियाली रात में प्रगट हो दुःख निवारण करना—इस घटना का सम्बन्ध भी श्री सीता वल्लभ शरण जी की बहन सावित्री से है। वह बचपन से ही पूजा-पाठ एवं नाम-जप में लगी रहती थी। आठ-दस साल की अवस्था में ही इन्हें रा

रह कर मूर्छा हो जाया करती थी। ग्रामीण मति के अनुसार प्रेत-बाधा होने के भ्रम में झार फूँक करायी गयी, पर लाभ नहीं हुआ। एक ओझे ने अवैष्णवी तरीके से कुछ उपचार करना चाहा, तो श्री सीतावल्लभ शरण जी के ही एक भाई को आवेश आ गया। कहा जाता है कि पूर्व में उनके एक भाई मर कर ब्रह्म पिशाच योनि में पड़े हुए थे। वही ब्रह्म पिशाच भाई ने वर्तमान भाई को आवेशित कर कहलवाया कि सावित्री को प्रेतबाधा नहीं है। इसे दिव्य दर्शन की झाँकी जब तक मिलती है जिसको वह बर्दाश्त नहीं करती है। अवस्था इसी प्रकार बनी रही। एक रात को तो ऐसा मालूम हुआ कि लड़की मृत प्राय हो गयी है और अँधियाली रात में लड़की की माँ जो हमारे चरित्रनायक की ही शिष्या थी, लड़की के शरीर के समीप श्री महाराज जी का ध्यान करते हुए आँसू बहा रही थी। परिवार के और लोग जहाँ तहाँ सोये पड़े थे। इस अँधियाली रात में माता ने आँगन से श्री महराज जी की आवाज सुनी और वह दौड़कर आँगन में आई। साक्षात् श्री महाराजजी खड़े थे। देखते ही उन्होंने कहा कि तू नाहक व्याकुल हो रही है, तुम्हारी लड़की न मरी है और न मरेगी। यह कहते हुए महाराजजी लड़की के पास गये, माथे पर हाथ रखकर सुहलाये, तब लड़की उठ बैठी। इसके बाद, भोर होने जा रहा था तब श्री महाराज जी यह कहते हुए, 'मुझे आवश्यक कार्य है, जाने दो, "अन्तर्ध्यान हो गये। उनके हटते ही सारे परिवार में चहल-पहल मंच गया, लोग इधर-उधर दौड़े, पर श्री महाराज जी नहीं मिले।

(ग) ब्रह्म पिशाच योनि से उद्धार—भत्सेरी में विवाह कलेवा उत्सव के बाद श्री सीतावल्लभ शरण जी के पिशाच भाई वर्तमान भाई के शरीर के माध्यम से ही श्री महाराज जी के चरणों पर गिर कर रोने लगे और सबों के सामने यह कहने लग गये कि आप तो श्री भगवान् के अवतार ही हैं। यदि आप कृपा करें तो इस इस योनि से मेरा उद्धार हो जाय। इस पर श्री महाराज जी ने कहा कि आप श्री अवध आवें। ब्रह्म पिशाच ने बतलाया कि पूर्व में उन्होंने श्री अवध जाने का प्रयास भी एक दो बार किया है परन्तु कड़ा पहरा रहने के कारण बिना श्री हनुमत् लालजी की मर्जी के प्रवेश संभव नहीं। यह सुनकर हमारे चरित्रनायक ने श्री युगल लीला स्वरूप श्री सीताराम जी की ओर देखा। स्वयं श्री किशोरी जी बोल उठीं कि मैं निजी छत्रछाया में रखने के लिये श्री हनुमान् जी से कह दूँगी। कहा जाता है कि इस घटना के बाद से आज तक ब्रह्म पिशाच भाई कभी अपने घर परिवार में नहीं आये। लोगों की निश्चित धारणा हो गयी कि उनका उद्धार हमारे चरित्रनायक की कृपा से हो गया। तर्कयुग में ऐसी घटनायें दिमाग में अंटने के लायक नहीं है, पर घटनाओं के द्रष्टा एवं भोक्ता श्री सीतावल्लभशरण जी और उनकी बहन आज भी वर्तमान हैं।

'जो न करे लकीर, सो करे फकीर' आज भी कठोर सत्य है और किसी भी चुनौती के परे है।

(घ) भावल में निवास करते हुए चरित्रनायक द्वारा श्री अवध में श्री उर्मिला जी के स्वरूप की पुकार पर साक्षात् प्रकट हो जाना—सम्भवतः १९४७ ई० के आश्विन-कार्तिक मास में हमारे चरित्रनायक चंपारण जिले के भावल आश्रम में कई दिनों से निवास कर रहे थे। उसी समय श्री अवध में रिटायर्ड डिपुटी कलक्टर श्री दुर्गादत्तजी को एक श्री विवाह उत्सव कराने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। वे स्वयं भावल जाकर श्री सीतावल्लभशरणजी के साथ लीला स्वरूपों को लेकर श्री अवध वापस आ गये, क्योंकि हमारे चरित्रनायक को भावल से उस समय हटना संभव नहीं हो सका। श्री अवध के ही प्रेमियों द्वारा श्री विवाह उत्सव सम्पन्न करा लेने का परामर्श देकर श्री सीतावल्लभ शरण जी के साथ श्री लीला स्वरूपों को भेजा गया। यहाँ पर विवाह उत्सव सम्पन्न होने के बाद श्री दुर्गादत्तजी ने उर्मिलाजी के स्वरूप को कुछ कटु वाक्य कह दिया। सन्ध्या का समय था, श्री उर्मिलाजी के स्वरूप रोते हुए हमारे चरित्रनायक को पुकारने लगे। तत्काल श्री उर्मिला जी ने चरित्रनायक को अपने सामने खड़ा पाया और कुछ दूर तक

उनके पीछे-पीछे वे दौड़ती भी गयीं। अन्य लोग तो इनके पीछे इन्हें फुसलाने और मनाने के लिये दौड़ पड़े, परन्तु, वे रोती हुई कहने लगीं कि श्री महाराज जी मुझको बुला रहे थे। जब मैं उनके पीछे-पीछे गयी तो वे अब नहीं दीख रहे हैं। मुझे वहीं पहुँचाओ। उस अवसर पर सभी लीला स्वरूप श्री महाराज के पास जाने के लिये व्याकुल हो गये। लाचार होकर श्री सीतावल्लभ शरण जी ने सभी स्वरूपों को आश्रम पहुँचा दिया। घटना की चर्चा सुनने पर श्री महाराज ने मुस्कुरा दिया।

(च) मथुरा-वृन्दावन धाम में श्री सीताराम विवाह उत्सव द्वारा अनिर्वचनीय आनन्द की वर्षा---श्री वृन्दावन के कतिपय संतों के हृदय में ऐसा अरमान अँकुरित हुआ कि श्री अवध से पुजारीजी महाराज (हमारे चरित्रनायक) श्री सीताराम विवाह-कलेवा उत्सव का सुख श्री वृन्दावन के प्रेमियों एवं संतों को दें तो बड़ी कृपा होगी। इस सम्वाद को लेकर गया जिले के श्री कृष्णोपासक प्रेमी श्रीसीतावल्लभ शरण जी के साथ हमारे चरित्रनायक से अवध में मिले। हमारे चरित्रनायक ने श्री वृन्दावन धाम समाज के साथ जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। सन् १९४९ ई० के शायद बसंत काल में सभी प्रेमियों के साथ चरित्रनायक श्री वृन्दावन में श्री सुदामादासजी की कुटिया पर आ पहुँचे। श्री वंशीवट घाट पर ही श्री विवाह महोत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें श्री मथुरा एवं वृन्दावन निवासी सभी, सन्त, नेमी, प्रेमी आमन्त्रित हुए।

जब श्री दुलहा सरकार चारों भाई सुसज्जित दुलहा वेष में नगर भ्रमण में निकले तो उनमें अपूर्व छवि छटा एवं आभा-प्रभा प्रकट हो गयी। श्री रूपमाधुरी से आकर्षित होकर सारे नगर के नेमी-प्रेमी संत-महात्मा सड़कों पर आ गये, जगह-जगह पर बारात परिछन की विधि हुई और दर्शकगण टकटकी लगाये छविपान करते रहे। कहा जाता है कि जो संत बाहर निकलने के अभ्यासी नहीं थे उन्हें भी आकर्षण द्वारा खींच लिया गया।

इस प्रकार नयनाश्रु भरे अपार नर-नारी, सन्त-महात्मा एवं प्रेमियों की उपस्थिति में श्री विवाह एवं कलेवा महोत्सव उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न हुआ। जहानाबाद हाटी हाई स्कूल के हेड मास्टर श्री यमुना प्रसाद सिंह के गुरुदेव, श्री अनन्त त्यागी जी महाराज ने तो यहाँ तक कहा कि श्री पुजारी जी महाराज (हमारे चरित्रनायक) ने तो सचमुच अपने हृदय के संजोये धन को हम श्री वृन्दावन वासियों को परमानन्द सुख देने के लिये साक्षात प्रकट कर दिया है। धन्य हैं श्री पुजारीजी महाराज और धन्य है उनकी उदारता। प्रेमविभोर रसिकों ने बार-बार हमारे चरित्रनायक का जय-जयकार किया।

(छ) श्री विवहुती भवन में श्री लक्ष्मी विसर्जन यज्ञ—साधारणतः सबों की ऐसी अभिलाषा होती है कि अपने आश्रम, घर या स्थान में कोष सदा भरा पूरा रहे, पर हमारे चरित्रनायक की अन्तरस्थ भावना इस दृष्टिकोण के कुछ विपरीत ही बनी रही। यह स्मरणीय है कि सिद्ध किशोरी जी के लीला काल में श्री विवहुती भवन का नाम भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विख्यात हो गया। पूजा, भेंट एवं उपहार के रूप में कीमती-से-कीमती साल-दुशाला, तोसक-तकिया, धोती-साड़ी, आभूषण, पात्र एवं कम्बल आदि सामान बराबर स्थान में प्राप्त होते रहे। इसके अतिरिक्त जितने श्री विवाह-कलेवा, रामार्चा पूजन उत्सव सुदूर क्षेत्रों में सम्पन्न किये जाते थे, उन सबों में भी प्राकृतिक विवाह के ऐसा ही वस्त्र-आभूषण, पात्र आदि अर्पण हुआ करते थे। श्री अवध में भी नेमी प्रेमी पधारकर चारों दुलहा-दुलहिन के लिये मुकुट-कीट, नाना प्रकार के अलंकार, बहुमूल्य श्रृंगार सामान तथा पहनावा, जो सोना चाँदी से मंडित होते थे, बराबर अर्पण किया करते थे, जिससे सामान रखने वाली कोठरी श्री विवहुती भवन में बराबर भरी ही रहती थी। जन्म-बधाई, विवाह, भंडारा आदि अवसरों पर बराबर मुक्त हस्त से वितरण करने के बाद भी सामान कोठरी भरी ही रही। महात्माओं के लिये संग्रह बहुत बड़ा दूषण है, विचार करते हुए हमारे चरित्रनायक ने निर्णय किया कि स्थान कोष में संग्रहित सारे सामान जिनकी की कीमत उस समय लाख से भी अधिक

कही जाती है, श्री अवध वासी सन्त-महात्मा एवं कंगलों के बीच वितरण कर दिये जायँ। यह वितरण कार्य तब तक चालू रहे जब तक कोठरी खाली न हो जाय।

उपरोक्त वितरण यज्ञ को ही 'श्री लक्ष्मी-विसर्जन यज्ञ' नाम दिया गया। प्रथम बार यह कार्य तो एक सप्ताह तक चलाया गया और तो भी बचे सामान को सड़क चौरहों पर रख दिया गया कि जिसे मन भावे ले जावे। इस प्रकार सन् १९४० एवं सन् १९५० ई० के बीच में तीन बार 'श्री लक्ष्मी विसर्जन यज्ञ' किया गया और सामान कोठरी को झाड़-बुहार कर साफ किया गया। सारे प्रयास के बाद भी पाँच छः महीने के अन्दर ही स्थान-कोष में सामान आकर पूर्ववत् भर जाते थे। एक बार एक सन्त ने हमारे चरित्र-नायक से कहा 'यह आप क्या खेलवाड़ करते हैं। श्री विवहुती भवन तो खास श्री किशोरी जी का महल है, जिनके सामने रिद्धि-सिधि हाथ जोड़े रहती हैं। श्री किशोरी जी का निजी कोष कभी खाली रह सकता है ?' सन्त वचन सुनकर श्री महाराजजी मुस्कुराते हुए, नतमस्तक हुए और उन्होंने कहा कि भविष्य में ऐसा नहीं किया जायेगा। जैसे श्री किशोरी जी चलावें वैसी ही व्यवस्था चलेगी। इस प्रकार तीन-तीन बार लाखों के सामान लुटाने के बाद भी सामान पूरे-के-पूरे ही रहे। श्री लक्ष्मी विसर्जन यज्ञ के द्रष्टा श्री सीतावल्लभ शरण जी महाराज और योगेश्वर शर्मा श्री महन्तजी मणिआँवा, जहानाबाद—आज भी वर्तमान हैं।

हमारे चरित्रनायक के इस आचरण की समानता श्री चैतन्य महाप्रभु से की जा सकती है। जब श्री महाप्रभु नाम वितरण करते हुए घने जङ्गलों से गुजर रहे थे तो मार्ग में प्रेमी लोग उपहार-भेंट श्री महाप्रभु को प्रतिदिन किया करते थे। श्री महाप्रभु उन सामानों को उसी दिन वितरण कर समाप्त कर दिया करते थे। पास में कुछ भी नहीं रहता था। श्री महाप्रभु इलायची प्रसाद जब तक पाने के आदी थे। एक दिन एक प्रेमी ने प्रचुर मात्रा में इलायची अर्पण किया, पर उसी समय सबों के बीच में इलायची वितरित कर दी गयी। उन्हीं के एक शिष्य ने एक दो इलायची बचाकर इसलिये रख लिया कि आगे आने वाले अरण्य भाग में शायद इलायची नहीं मिल पायेगी। इसलिये, यह संग्रहित इलायची श्री गुरुदेव के भोग लगाने में काम आयेगी।

दूसरे दिन भ्रमण में ऐसा ही हुआ। अन्तर्यामी श्री महाप्रभु ने इलायकी की खोज कर ही दी और उस शिष्य ने हर्ष पूर्वक इलायची उन्हें प्रदान कर दिया। इसका परिणाम उलटा हुआ। शिष्य द्वारा इस संग्रह के लिये श्री महाप्रभु बहुत ही खिन्न हुए और दण्ड स्वरूप उस शिष्य को अपराध निवारण हेतु कई लाख नाम जपने पड़े।

(३) स्वयं श्री भगवान् ने ही चरित्रनायक का रूप धारण कर श्री अवध में भण्डारा सम्पन्न किया----श्री केशव बाबू (श्री किशोरी शरण जी) तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सिया अली, जो हमारे चरित्रनायक के ही कृपापात्र हैं, एवं ग्राम चुटहा, जिला मुजफ्फरपुर के निवासी हैं, की देखी सुनी हुई घटनाओं में कुछ का उल्लेख आगे किया जा रहा है।

(क) प्रथम घटना का सम्बन्ध श्री अवध में होने वाले पूर्व निश्चित एक साधु-भंडारा से है। श्री अवध में भण्डारे की तिथि निश्चित कर हमारे चरित्रनायक ने स्थान के परिकरों को सारी व्यवस्था ठीक रखने का आदेश देकर गया जिले के ग्रामीण क्षेत्र में श्री विवाह-कलेवा कार्य क्रम सम्पन्न कराने के लिये प्रस्थान किया। गया जिले के भ्रमण में जगह-जगह पर श्री रामार्चा, श्री विवाह आदि उत्सवों में इतने संलग्न हो गये कि भण्डारे की तिथि की सुधि उन्हें नहीं रही। उस तिथि के बीतने के एक दिन के बाद इन्हें भण्डारे का स्मरण हुआ। बड़े संकोच एवं ग्लानि के साथ हमारे चरित्रनायक ने तुरन्त श्री अवध के लिये प्रस्थान किया, जहाँ वे दूसरे दिन सुबह पहुँचे। श्री विवहुती भवन में आने पर उन्हें किसी ने दण्ड

प्रणाम नहीं किया, बल्कि लोग विस्मय भरी दृष्टि से उन्हें देखने लगे। एक ने दूसरे से कहा—"अभी अभी हम लोग इनको भण्डारे के बाद बाहर जाने के लिये स्टेशन तक पहुँचा आये, तब पुनः ये क्यों वापस चले आये।" परिकरों की आपसी बातचीत की भनक हमारे चरित्रनायक के कानों में पड़ी। उन्होंने यह सोचते हुए कि उनकी लापरवाही के कारण श्री भगवान् को ही कष्ट हुआ, प्रायश्चित के रूप में तीन दिनों का अनशन कर दिया। रोते पड़े रह गये और किसी के मनाये नहीं माने। इस अवसर पर श्री उर्मिला जी के स्वरूप ने हमारे चरित्रनायक के पास आकर समझाया। कि आपने तो जान बूझकर कुछ नहीं किया है। भक्त की लाज तो बराबर भगवान् रखते ही हैं। आपके संकल्पित कार्य को स्वयं भगवान न पूरा करेंगे तो और कौन करेगा? भक्तों के कार्य करने में भगवान् को कष्ट नहीं होता है, बल्कि आनन्द होता है। आपके अनशन से ही हम लोगों को कष्ट हो रहा है। बालक रूप श्री उर्मिला जी के सारगर्भित वचनों से हमारे चरित्रनायक स्वस्थ चित्त हो गये और श्री उर्मिलाजी के हाथों से प्रसाद पाकर उसने अपना अनशन भङ्ग कर दिया।

निम्नांकित अवसरों पर श्री भगवान् ने हीं चरित्रनायक का रूप धारण कर श्री विवाह उत्सव श्री अवध तथा छपरा जिले में एवं श्रीरामजन्म बधाई उत्सव श्री अवध में सम्पन्न किया-

(ख) श्री अवध में ही एक संत ने अपने स्थान में श्री सीताराम विवाह-उत्सव कराने का वचन हमारे चरित्रनायक से ले लिया और इसकी तिथि भी निश्चित कर दी गयी। पाँच सात दिनों के बाद जब हमारे चरित्रनायक कई कार्यों में उलझे हुए थे, एक दूसरे सन्त ने भी उसी तिथि पर श्री विवाह उत्सव कराने का आश्वासन उनसे प्राप्त कर लिया। इस प्रकार दोनों सन्तों के यहाँ श्री विवाह उत्सव की तैयारियाँ की गयीं, तोरण द्वार सजाये गये और श्री विवाह-मंडप के यथोचित शृंगार किये गये। कहा जाता है कि दोनों सन्त श्री अवध के दो छोर पर निवास करते थे। अतएव, एक दूसरे से मिलकर श्री विवाह उत्सव कार्यक्रम की जानकारी परस्पर प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिल पाया। दोनों ही निश्चय पर थे कि श्री पुजारी जी महाराज (हमारे चरित्रनायक) निश्चित समय पर आ ही जायेंगे। संयोगवश, हमारे चरित्रनायक प्रथम सन्त के यहाँ ही पधारे और वहीं पर एक दो सन्तों ने चरित्रनायक से कहा कि अमुक स्थान में भी आपको आज ही श्री विवाहोत्सव कराना है, वहाँ कितने बजे आप जायेंगे। हमारे चरित्रनायक बड़े ही चिन्तित हो गये और मन-ही-मन उन्होंने निर्णय किया कि जल्दी-जल्दी यहाँ का उत्सव कराकर दूसरे सन्त के यहाँ भी पहुँच जायँ। जल्दी होने पर भी लगभग ग्यारह बजे रात्रि में ही आरती हो पायी। हमारे चरित्रनायक ने सोचा कि विलंब के लिये संतजी से क्षमा माँग लेंगे और वहाँ का भी कार्यक्रम भोर तक सम्पन्न कर देंगे। दूसरे सन्त के स्थान की ओर जब वे द्रुतगति से चले जा रहे थे तो रास्ते में सन्तों की मंडली उधर से ही वापस आ रही थी। रात की अँधियाली में ये लोगों की आँख बचाये चले जा रहे थे, पर सन्तों की बातचीत की आवाज तो इन्हें मिल ही रही थी। आपस में वार्तालाप करते हुए एक सन्त बोल उठे—"धन्य है श्री पुजारी जी महाराज, जिन्होंने श्री विवाहोत्सव में आज आनन्द की झड़ी वर्षा दी। आज की युगल झाँकी भी दर्शनीय रही।" यह जानकर कि दूसरे सन्त के यहाँ भी श्री विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ हमारे चरित्रनायक आन्तरिक ग्लानि से नहीं बच सके। वे अश्रु बहाते हुए उस स्थल तक गये, जहाँ स्वयं श्री किशोरी जी ने श्री विवाह उत्सव की सारी व्यवस्था करा दी थी। वहीं पहुँच कर उन्होंने उस पावन स्थल को दण्डवत् किया और अपने स्थान को वापस आये। इसकी चर्चा तो उन्होंने किसी से नहीं की, पर तत्कालीन सन्तों के मुख से ही इस घटना का प्रचार हुआ।

(ग) एक तीसरी घटना छपरा जिले के ग्रामीण क्षेत्र की बतलाई जाती है। वहाँ भी दो मील

की दूरी पर दो विभिन्न स्थलों में श्री विवाहोत्सव एक ही तिथि में भूल से निश्चित किया जा चुका था। एक उत्सव बड़े ही धनी मानी व्यक्ति के यहाँ होना था, जहाँ तत्कालीन श्री लक्ष्मण किलाधीश श्री अनन्त रामदेव शरण जी महाराज तथा अन्य महात्मागण भी आमन्त्रित होकर पधारे थे। दूसरा उत्सव किसी गरीब प्रेमी के यहाँ उसी तिथि पर निश्चित हो गया। उक्त धनी मानी व्यक्ति के यहाँ श्री विवाहोत्सव सानन्द आरम्भ हो गया, पर वहीं पर आस-पास के एक ग्रामीण ने हमारे चरित्रनायक के कानों में इस बात की याद दिलायी कि आज ही रात्रि में अमुक व्यक्ति के यहाँ भी आप ही को श्री विवाहोत्व कराना है। इस अवसर पर भी हमारे चरित्रनायक ने यथा सम्भव जल्दीबाजी की और अन्तिम आरती करते तक लगभग ग्यारह बजे रात्रि हो गयी। भूल-पर-भूल होती जा रही है, इस बात की चर्चा उन्होंने श्री लक्ष्मण किला के श्री महाराज जी से की और उनसे विनय किया कि आप एक महान् सन्त हैं, कृपा कर श्री किशोरी जी से प्रार्थना कर दें कि मुझे ऐसी असावधानी से बचावें। तत्काल हमारे चरित्रनायक उस ग्राम तक गये और वहाँ भी श्री अवध की नाईं लौटते हुए दर्शकों को रास्ते में पाया, जो श्री विवाह उत्सव के सानन्द सम्पन्न करने के लिये चरित्रनायक की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। उस रात्रि में भी हमारे चरित्रनायक श्री विवाह मण्डप को दण्डवत् करने के बाद रात भर रोते ही पड़े रहे। ऐसी आश्चर्यमय घटना के रहस्य को कौन समझ सकता है? साधारण तर्क की कसौटी पर कसने से तो अनेकों शंकायें इन घटनाओं के सम्बन्ध में हो सकती हैं। पर उन घटनाओं के जानकार एवं दर्शक आज भी जीवित हैं। शंका की गुंजायश कहाँ? प्रश्न है कि हमारे चरित्रनायक के रूप में दूसरे स्थल पर कौन था और लीला स्वरूपों के रूप में किसने रूप धारण किया। नाना रूप धारण करने में समर्थ वे थे या स्वयं श्री करुणामयी किशोरी जी ने भक्त की लाज रखने के लिये ऐसी रचना कर डाली। दोनों ही सम्भावनायें विश्वसनीय हैं और महान् सन्तों के जीवन में ऐसी घटनायें अनादिकाल से घटित होती आ रही हैं।

(४) एक चौथी घटना, दरभङ्गा जिले के दलसिंग सराय नगर से सम्बन्धित है, जो उपरोक्त घटना के दो तीन साल बाद ही घटित कही जाती है। इस घटना से सम्बन्धित दलसिंग सराय के ही निवासी श्री चन्द्रकला शरण जी अभी भी जीवित हैं। उन्होंने बतलाया कि एक साल रामनवमी जन्म बधैया उत्सव के अवसर पर श्री चन्द्रकलाशरण जी के परिवार के सारे लोगों ने रोककर हमारे चरित्रनायक को दलसिंग सराय में ही रख लिया, क्योंकि लाखों की पैत्रिक सम्पत्ति के बटवारा का भार सर्व सम्मति से उन्हीं को दिया गया था और उसे सुलझाने में रोज बिलम्ब ही होता था। लाचार हमारे चरित्रनायक यहीं रुके रहे और श्री चैत्रशुक्ल दशमी को दलसिंग सराय से प्रस्थान कर वे दूसरे दिन भोर में लकरमण्डी स्टेशन आ पहुँचे। वहाँ से पैदल श्री अवध के लिये उन्होंने प्रस्थान किया और श्री सरयू स्नान कर अपने स्थान की ओर चल पड़े। मार्ग में श्री विवहुती भवन के दो-एक सेवक मिले, जो चरित्रनायक के पीछे हो लिये और आपस में बोलने लगे कि अभी लकरमण्डी ट्रेन में इन्हें चढ़ाया था और ये दूसरे श्री महाराज जी किधर से आ गये। दण्ड-प्रणाम तो किसी ने किया नहीं, पर ग्लानिवश हमारे चरित्रनायक स्थान पहुँचते ही गठरी मोठरी जमीन पर पटक पड़ गये, और चिल्लाकर रोने लगे।" हमारे जैसे नीच को श्री अवध में जगह कैसे मिल गयी? मैं बराबर से ही बेढंगा, झूठ एवं लबाड़ का आचरण करता आ रहा हूँ। श्री अवध के सन्तों की सेवा छोड़कर मैं मायिक जगत में पड़ा रहा, यह क्या कम अपराध है?" आदि बातों को कहते हुए वे विलाप-सा करने लगे। भीड़ इकट्ठी हुई और लोगों ने शान्त होने के लिये उनसे प्रार्थना की। सबों ने कहा कि बड़े ही आनन्दमय वातावरण में आपने बधैया जन्म उत्सव श्री अवध में सम्पन्न किया और अन्यत्र जाने को प्रस्थान कर गये। पर, यह अच्छा ही हुआ कि आप ट्रेन से उतर

कर लौट आये और छठी उत्सव भी सानन्द आपके द्वारा ही सम्पन्न होगा। इस सत्य भरे व्यङ्ग से हमारे चरित्रनायक का रोना तो बन्द नहीं हुआ, पर बोल चाल शान्त हो गया। धीरे-धीरे वे स्वस्थ चित्त हुए और तब उन्हें प्रसाद पवाया गया।

सूचनार्थ पाठकों को यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि ऐसी घटनायें तो अनेकानेक लेखक के पास प्रस्तुत की गयी, पर उनमें से कुछ ऐसी ही घटनाओं का चुनाव कर उल्लेखित किया जा रहा है, जिनके द्रष्टा एवं जानकार वर्तमान हैं और घटनाओं की सत्यता को प्रमाणित करते हैं। जिन लोगों ने श्री भक्तमाल जी का पाठ किया है, अथवा महान् सन्तों की सेवा में समय बिताया है, उन्हें तो उपरोक्त घटनाओं की सत्यता में रञ्चमात्र भी शङ्का नहीं होगी। केवल ज्ञान के पोथे में रत रहने वालों को या तर्क प्रधान जीवन व्यतीत करने वालों को यदि कुछ शङ्का हो भी जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है—

जे श्रद्धा सम्बल रहित, नहि सन्तन कर साथ।
तिन कहँ मानस अगम अति, जिनहिँ न प्रिय रघुनाथ॥

(५) लेखक की विशेषता पूर्ण शरणागति तथा परम सिद्ध महात्मा श्री अलबेला बाबा द्वारा चरित्रनायक को आत्म समर्पण—चरित्रनायक के जीवनी लेखक, सन् १९४९ ई० में डिस्ट्रिक्ट पब्लिक रिलेशन अफसर के पद पर मुजफ्फरपुर जिले में कार्य कर रहे थे। लेखक की पूर्व मानसिक अवस्था क्या थी और पूर्व जीवन कैसा था इसकी संक्षिप्त जानकारी हो जाने के बाद ही लेखन की शरणागति सम्बन्धी विशेषता बूझ पड़ेगी। इसके साथ ही श्री अलबेला बाबा को परम सिद्ध क्यों कहा गया और ऐसे सिद्ध महात्मा ने चरित्रनायक को क्यों आत्म समर्पण किया, इस रहस्य को समझने के लिये श्री अलबेला बाबा के भी संक्षिप्त जीवन चरित्र का ज्ञान पाठकों के लिये आवश्यक प्रतीत होता है। तदनुसार ही संक्षिप्त रूप से तत्सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

जहाँ तक लेखक का सम्बन्ध है, बालपन से प्रवेशिका परीक्षा स्तर तक श्री राम नाम कीर्तन से प्रेम होते हुए भी, विश्वविद्यालय की पढ़ाई काल में लेखक का मन आर्य-समाज की विचार धाराओं की ओर चला गया। अपनी जन्म भूमि पर आर्य-समाज के वार्षिक उत्सव भी हुआ करते थे। स्वभावतः सनातन धर्म की जो रूढ़ियाँ आर्य समाज द्वारा बतलायी जाती थीं या जिन बाह्य आडम्बरों की निन्दा आर्य समाजियों द्वारा की जाती थी, तत्सम्बन्धी सभी तर्क लेखक के मानस में भी घर कर गये थे। अतएव, साधु वेषधारियों से घृणा-सी रहती थी और पूजा-पाठ की प्रचलित प्रणाली के विरुद्ध भी भावना बन चुकी थी। आर्य समाज में रहते हुए भी आन्तरिक शान्ति का अभाव हमेशा खलता था। सन् १९४१ ई० में लेखक की जन्म भूमि पर आर्य समाज का अन्तिम जलसा हुआ। उस वर्ष आर्य समाज के स्वामी जी ने लेखक से निरामिष रहने का संकल्प कराया और यज्ञोपवीत धारण करा दिया। यही एकमात्र कल्याण आर्य समाज में रहने से हो पाया, पर मूर्ति-पूजा खंडन के सिद्धान्त पर लेखक का आर्य समाज से अन्तिम मतभेद हो गया। एक ओर तो आर्य समाजी विद्वान् स्वामी दयानन्द एवं स्वामी श्रद्धानन्द के चित्रपटों पर मालार्पण करते और झुककर सम्मान प्रदर्शन करते थे, पर दूसरी ओर मन्दिर में मूर्ति पूजन का खण्डन किया करते थे। उनके प्रचार एवं आचरण में ऐसे अन्तर देखकर लेखक ने वाद-विवाद किया, पर, किसी आर्य समाजी महात्मा ने सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। अतएव बिहार प्रान्तीय आर्य समाज, पटना से व्यवहारिक सम्बन्ध तोड़ दिया गया। आन्तरिक सुख के लिये अब क्या किया जाय इसकी तलाश लेखक के हृदय में बराबर बनी रहती थी।

उसी मानसिक स्थिति में, सन् १९४२ ई० की जनवरी में ससाराम एवं औरङ्गाबाद सबडिविजन

के लोगों से यह हल्ला सुनने को मिला कि रोहतास पहाड़ी के अञ्चल में श्री भगवान् ही प्रगट हो गये हैं। उसी साल के वैशाख मास में सो मभिआवाँ ग्राम के पास लाखों का मेला लगा था, लेखक की जन्म भूमि के लोग भी वहाँ गये आये, पर अंध विश्वासी भावनाओं से लेखक अप्रभावित ही रहे। सन् १९४३ ई० में सन्त रूप में वही भगवान् लेखक के घर से छः मील की दूरी पर नबी नगर थाने के टँडवा ग्राम में पुनपुन नदी के तट पर स्मशान घाट आ पधारे। वहीं एक गाँछ के नीचे रहने लगे। उस समय ये सन्त किसी ग्राम में जाते नहीं थे। जहाँ ये "चूँटा" गाड़कर बैठ जाते थे, लोग स्वतः आकर्षित होकर उनके दर्शनार्थ जाने लगते थे। इस प्रकार उनकी सिद्धाई का कमाल ग्राम-ग्राम में फैलता गया और लेखक भी घर के वयोवृद्ध सम्बन्धियों के कहने से उक्त संत के दर्शन के लिये कई लोगों के साथ माघ मास सन् १९४३ ई० में टँड्वा पीपरडीह आश्रम गया।

श्री महात्मा जी एक फूस की झोपड़ी में पुनपुन नदी के तट पर निवास कर रहे थे और प्रतिदिन अपराह्न में ग्राम-ग्राम से कीर्तन दल आकर उनकी झोपड़ी के सामने श्री हरियश गान सन्ध्या तक नित्य करते थे। दर्शनार्थियों की भीड़ हजारों की संख्या में बढ़ती गयी। लेखक के अन्य साथी तो जाकर श्री महात्मा जी के चरणों पर माथा झुकाये और बैठ गये, पर लेखक दूर से ही खड़े होकर कीर्तन-गान सुनने लग गया। श्री महात्मा जी ने लेखक की ओर देखा और अपने सेवक के द्वारा निकट बुलवा लिया। थकावट के कारण लेखक को विश्राम करने की इच्छा हुई और इसी समय से श्री महात्मा जी ने लेखक पर अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया।

अन्तरस्थ भावना को जानते हुए उन्होंने बिना लेखक के कहे ही, लेखक समेत सभी व्यक्तियों को अपनी झोपड़ी से चार-पाँच सौ गज की दूरी पर एक दूसरी फूस की झोपड़ी में विश्राम करने की व्यवस्था करा दी। ज्यों ही लेखक अपने साथ के नौकर को जलपान के लिये बाजार से खाद्य सामान लाने को पैसा देने लगा, त्यों ही महात्मा जी के आश्रम से एक सज्जन प्रचुर मात्रा में फल, मेवा, मिठाई, लिये आ पहुँचे और उन्होंने कहा कि बाबा ने आप लोगों के लिये ही यह भेजा है। सामान रख लिया गया और साथ के एक वयोवृद्ध सज्जन बोल उठे—"श्री महात्माजी अन्तर्यामी पुरुष हैं। जो-जो इच्छा तुम्हें हो रही है वे तत्काल उसकी पूर्ति कर रहे हैं।" इसके उत्तर में विनोद पूर्वक लेखक ने उनसे कहा—आप तो गाँजा पीते हैं न, बिन माँगे गाँजा आ जाय तो उनका अन्तर्यामी होना स्वीकार किया जायेगा।" इतना बोलने ही की देर थी, उधर से चीलम पर गाँजा चढ़ाये हुए, एक सज्जन आ धमके। उन्होंने कहा कि यदि आप में कोई गाँजा पीते हों तो बाबा ने चीलम चढ़वाकर गाँजा भेजा है। इसके बाद तो उन वयोवृद्ध सज्जन को मौका मिल ही गया। उन्होंने कहा—"अब बोलो ?" लाचार इस घटना के बाद तो लेखक को शंकाहीन होना ही पड़ा। इतना ही नहीं, जिन-जिन प्रश्नों को लेखक ने सोचकर घर से चलते समय अपने हृदय में रखा था, श्री महाराज जी ने बिना पूछे ही दूसरे-दूसरे प्रसङ्ग के सन्दर्भ में उनका उत्तर दे ही दिया। श्री महात्मा जी के इस दर्शन के बाद लेखक का जीवन अब ऐसे सन्तों की ओर मुड़ गया और श्री महात्मा जी के प्रति श्रद्धाभक्ति का सम्बन्ध आरम्भ हो गया।

आज के युग में तो सिद्धि प्राप्त सन्तों की ही पूछ है और भगवान् जैसी उन्हीं की पूजा हो रही है। जिन श्री महात्मा जी से लेखक का सम्बन्ध हुआ उनकी सिद्धियाँ तो हर प्रकार से असाधारण पायी गयीं। वैशाख मास के मध्यान्ह काल की लू में सोन नदी के तट पर मँझिआँवा ग्राम के पास उन्होंने चौरासी अग्नि का ताप लिया, जिसे लाखों लोगों ने देखा। लगभग दो घण्टे तक अग्नि की लहर के बीच में श्री महात्मा जी बैठे रहे और अग्नि जलकर राख हो जाने पर उनके शरीर पर पसीने का एक कण भी

भी नहीं देखा गया। लगभग चालीस फीट गहराई वाले सरोवर में स्नान के समय उन्हें ऐसा चलते हुये पाया गया मानो वे पृथ्वी पर ही चल रहे हों। योगाभ्यास में इनकी योग्यता ऐसी देखी गयी कि वे बद्ध पद्मासन में बैठकर भूमि से काफी ऊँचा उठकर ध्यानावस्थ रहा करते थे। बिना कहीं गये सैकड़ों गाँव की जनता टूट पड़ी और लाखों रुपये व्यय कर पीपरडीह ग्राम में एक सप्ताह तक श्री विष्णु महायज्ञ हुआ, जहाँ बराबर मेला लगा रहा। कहीं श्री रामचरित मानस की कथा होती थी, कहीं अखण्ड नाम कीर्तन होता था और एक बड़े पण्डाल में काशी आदि के विद्वानों द्वारा धार्मिक प्रवचन हुआ करते थे। फूस की झोपड़ियों में एक सन्त नगरी अलग बनी थी जहाँ आगत सन्तों का निवास रहता था और सत्संग हुआ करता था। बसडिहा ग्राम के कुछ लोगों ने पिपरडीह यज्ञ से सामानों की चोरी की। फलस्वरूप, केवल उन लोगों के ही घर आग में जलकर भस्म हो गये। इस घटना के बाद श्री महात्माजी के प्रति लोगों में श्रद्धा के साथ-साथ भय भी उत्पन्न हो गया। ऐसे सिद्ध महात्मा ने भी आगे चलकर हमारे चरित्रनायक को आत्मसमर्पण कर दिया, श्री राम मन्त्र के स्थान पर उनसे श्री युगल मन्त्र ले लिया, सम्बन्ध पत्र के साथ मानसिक अष्टयाम सेवा की दीक्षा भी आपने हमारे चरित्रनायक से ली। उक्त सिद्ध महात्मा जी जनता के बीच में परमहंस श्री अलबेला बाबा के नाम से पुकारे जाते थे। यद्यपि, उन्होंने पूछने पर कहा था कि श्री गुरुदेव का दिया हुआ उनका शरणागति नाम "जयराम दास" ही था, तो भी अलौकिक कृत्यों को देखते हुए अन्य सन्त, महात्मा एवं प्रेमियों ने कभी उन्हें "अलबेला' कहा, और कभी उन्हें" परमहंस" कहा। अतएव, जनता-जनार्दन द्वारा दिये गये इस नाम को भी उन्होंने अंगीकार कर लिया और आज भी ये श्री अलबेला बाबा के नाम से विख्यात हैं।

श्री सन्त अलबेला बाबा की जन्म भूमि छपरा जिले के ही परसा थाना अन्तर्गत मुजौना ग्राम है। आपका जन्म एक सम्पन्न ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता जी का नाम श्री राम परीक्षण दूबे एवं आपके बचपन का नाम श्री जगनारायण दूबे था। जब इनकी अवस्था नव साल की थी, उनके ग्राम में एक बार भारत के सुविख्यात सन्त श्री पयहारी महाराज के जमात ने उनकी बस्ती में आकर कुछ दिनों के लिये ग्राम के बाहर निवास किया। सन्त मण्डली में से एक सन्त की ओर बालक जगनारायण दूबे का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ, क्योंकि उक्त सन्त ने उनके सामने सूखी लकड़ी में फूँक कर ही अग्नि प्रगट कर दिया। इन्होंने सन्त जी से एकान्त में मिलकर अग्नि जलाने की क्रिया सिखलाने का अनुरोध किया, पर सन्त जी ने उत्तर दिया कि उनके साथ चलने पर ही कुछ काल में यह क्रिया सिखलायी जा सकती है। इसके लिये उनके हृदय में प्रलोभन इतना प्रबल हो गया कि एक रात्रि को मात-पिता की आँख बचाकर प्रचुर मात्रा में रुपये उन्होंने माँ के बक्से से निकाल लिये और पूर्व निश्चय के अनुसार सूर्योदय के पहले ही उक्त सन्त के साथ प्रस्थान किया।

सन्त के साथ वे तपोभूमि गिरनार पहाड़ के अंचल में आ गये। उस पहाड़ पर एक मन्दिर की सीढ़ी पर बैठकर आप सोचने लगे कि मैं अकेला हूँ, कहीं सन्त जी हमारे सब रुपये ले न लें। ऐसा सोचते ही उन्हें घर से लाने वाले सन्त तो अन्तर्ध्यान हो गये और श्री द्वारिकाधीश डाकवर के सुप्रसिद्ध श्री रामोपासक सन्त श्री अनन्त बाबा नरसिंहदास जी ने उन्हें एकाकी अवस्था में वहाँ पाया। उन्होंने बालक जगनारायण दूबे को समझा-बुझाकर अपने साथ चलने को कहा और वे राजी हो गये। आगे चलकर यही आत्मा उनके मन्त्र गुरु हुए और इन्हीं ने इनको लँगोटी-अँचला देकर साधु वेष प्रदान किया।

श्री बाबा नरसिंहदास के साथ वे अहमदाबाद लाये गये, जहाँ एक गुफा में श्री महात्मा जी भजन

किया करते थे। कुछ काल श्री गुरुदेव के साथ रहने के बाद उन्होंने अपनी सेवाओं से श्री गुरुदेव को प्रसन्न किया। इनके दादा गुरु भी उड़ीसा के एक महात्मा थे जो परम सिद्ध एवं पहुँचे हुये सन्त थे। श्री गुरुदेव की कृपा से उन्हें श्री दादा गुरु की सेवा में भी रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो छः मास हरिद्वार में रहा करते थे। इस प्रकार दो-तीन साल सेवा में बिताकर उन्होंने अपने गुरु एवं दादा गुरु से आशीर्वाद प्राप्त कर कुछ वर्ष गिरनार,कुछ वर्ष बारानार (गया का बराबर पहाड़) और कुछ साल शाहाबाद बनारीघाट के समीप श्री गुप्तेश्वर महादेव की भी गुफा में तपसाधना की। इस प्रकार लगभग बारह वर्ष तपोवनों में तपस्या समाप्त कर वे श्री गुप्तेश्वर महादेव की गुफा से ही रोहताश्व पहाड़ी अँचल में स्थित मँझिआँवा ग्राम में सन् १९४२ ई० की जनवरी में प्रगट हुये, जिसके बाद का विवरण संक्षेप में पूर्व पंक्तियों में दिया जा चुका है। इन्होंने पटना, गया, शाहाबाद एवं पालूम जिलों के ग्राम्य क्षेत्रों में लगभग ५२ बावन यज्ञ सन् १९५० ई० तक पूरे किये। सन् १९४२ ई० में वे एक कोपीन, कमण्डल के साथ प्रगट हुये थे और गाछों के नीचे रहा करते थे, पर यज्ञ कार्यक्रम में संलग्न होने के बाद ही इन्होंने वस्त्र धारण किया। वस्त्र धारण करने के बाद से ही इनका जीवन राजर्षि जैसा व्यतीत होने लगा।

लेखक का सम्बन्ध श्री अलबेला बाला के साथ सन् १९४३ ई० से १९४८ ई० तक बराबर बना रहा और हर पारिवारिक आपत्ति के अवसर पर उन्होंने सहारा दिया और आत्मबल भी बढ़ाया। कई अवसरों पर तो इन्होंने असम्भव को भी सम्भव कर दिया। एक ओर तो ऐसे महान् सन्त का सहारा मिला और दूसरी ओर सन् १९४१ ई० से लगातार लेखक की पारिवारिक स्थिति भयानक बनती गयी। विपत्ति के बादल हमेशा मँडराते रहे और एक बड़ा परिवार प्रति वर्ष परिवार के दो एक सदस्यों की मृत्यु के कारण छोटा होता गया। परिवार का एकमात्र सहारा, लेखक के पिता दम्मा रोग से पीड़ित होने के कारण सदा मरणासन्न अवस्था में रहा करते थे। इसलिये परिवार का सारा बोझ लेखक के मत्थे पर ही आ पड़ा था। जिसका निर्वाह मुजफ्फरपुर रहते हुए जन्मभूमि पलामू जाकर करना सम्भव नहीं था। शत्रुओं को भी अच्छा मौका मिल गया और भूमि सम्बन्धी दस-ग्यारह मुकदमें कचहरियों में चल रहे थे। सन् १९४८ ई० तक बराबर श्री अलबेला ने खोज खबर ली और संकट टालने में सहायता भी दी, पर सन् १९४८ ई० के बाद उनका कहीं पता ही नहीं था। इसलिये, मानसिक सन्तुलन बहुत ही डाँवाडोल स्थिति में था और सतत कोई सहारा की खोज में हमेशा बेचैनी बनी रहती थी।

उपरोक्त परिस्थिति में ही सन् १९५० ई० की जनवरी में आठ लीला स्वरूप एवं सन्त महात्मा के साथ हमारे चरित्रनायक मुजफ्फरपुर श्री गोपाल शुक्ल दारोगा के मकान में आकर लगभग एक सप्ताह ठहर गये। इनके आने के पूर्व से ही उस मुहल्ले के माननीय व्यक्ति, डी० आई० जी० पुलिस कार्यालय के बड़ा बाबू श्री रामदेनी सिंह, जिले के हेल्थ अफसर डॉ० श्री विन्देश्वरी प्रसाद सिंह एवं सहायक इंजिनियर श्री सुखदेव प्रसाद सिंह आदि सज्जनों ने इनका यशगान लेखक से किया था। श्री ब्रह्मदेव नारायण, रिटायर्ड स्टेशन मास्टर और श्री रामदेनी बाबू दोनों ही हमारे चरित्रनायक के ही कृपा पात्र थे। इन दोनों ने तो चरित्रनायक को 'सुजान' अवस्था का सन्त बतलाया, पर, श्री अलबेला बाबा की सिद्धियों का कमाल देखने सुनने के बाद लेखक के विचार से और सभी सन्त फीके ही मालूम पड़ते थे। उनकी वाक् सिद्धि, उनका अन्तर्यामीपन, और समय-समय पर विपत्तियों में दिये गये सहारे की याद बराबर पड़ती रहती थी। बेबसी की अवस्था में उनके नहीं मिलने तक दूसरा सहारा प्राप्त करने के सिवाय और कोई विकल्प ही नहीं प्रतीत हुआ। यह भी लेखक का सौभाग्य ही था, कि जहाँ हमारे चरित्रनायक आकर ठहरे, उसी अहाते में श्री गोपाल शुक्ल के ही एक छोटे मकान में किरायेदार के रूप में लेखक भी सपरिवार निवास कर

रहा था। इस प्रकार लेखक को चरित्रनायक को तो खोजना नहीं पड़ा बल्कि वे स्वयं आकर लेखक से बरबश मिले। सायं-प्रातः हरि नाम कीर्तन एवं झाँकी झूले का कार्यक्रम रोज चलता रहा, जिसमें सम्मिलित होकर लेखक भी थोड़े समय के लिये अपनी भयानक स्थिति को भूल जाया करता था। बच्चों को भगवान् बनाकर पूजा करने की प्रणाली, उन्हें ही दंडवत् करना और उनका ही चरणामृत तथा शीथ प्रसाद पाना इसका कोई औचित्य लेखक के मस्तिक में नहीं बूझ पड़ता था, तो भी करना ही क्या था ? 'डूबते को तिनका का सहारा।' यही क्या कम था ?

आन्तरिक सत्सङ्ग---हमारे चरित्रनायक के शील, स्वभाव, व्यवहार से लेखक को प्रभावित होने में देर नहीं लगी। नित्य दण्ड-प्रणाम के बाद चरित्रनायक लेखक से समाचार पूछा करते और उत्तर के क्रम में श्री अलबेला बाबा से गुरुवत् भावना की बातें तथा परिवारिक विपत्ति के विवरण से उनको पूर्ण रूपेण अवगत करा दिया गया। उन्होंने ध्यान पूर्वक सभी कुछ श्रवण किया, इससे लेखक का उत्साह और भी बढ़ा। बात-चीत के क्रम में लेखक ने यह भी कह दिया कि जिसकी मानसिक एवं पारिवारिक स्थिति इतनी भयावह हो वह भगवान् के बारे में क्या सोच सकता है। यह ऐसी स्थिति है जिसमें भगवान् को ही ऐसे जन के बारे में स्वयं सोचना चाहिये। इस प्रकार की स्थिति में यदि भगवान् ही अनायास आकर किसी रूप में सहारा दें, दुःख के गर्म आँसू को पोंछे और आपदाओं को हरण करें तभी जीव को ऐसा विश्वास हो सकता है कि भगवान् भी एक शक्ति है, जो दीन-दुखियों की खोज खबर बिना कहे भी लेता है। इन सारी बातों को हमारे चरित्रनायक ने गम्भीर मुद्रा में सुना और मुसकराते हुए कहा कि आपकी बातों को तो मैंने ध्यान से सुना। क्या आप मेरी बात भी कुछ सुनेंगे ? लेखक ने हाँ कहा, तब उन्होंने प्रश्न और उत्तर के रूप में प्रकाश देना शुरू किया।

सर्व प्रथम चरित्रनायक ने पूछा कि आपकी सहज वृत्ति क्या है ? आप मन्दिर जाते हैं कि नहीं और मन्दिर बिहारी विग्रह को प्रणाम करते हैं कि नहीं ? आपका रुझाव भगवान् राम की ओर है या भगवान् कृष्ण की ओर है ? लेखक ने उत्तर दिया कि मन्दिरों के प्रति श्रद्धा है और मन्दिर विग्रह को प्रणाम भी करता हूँ। भगवान् राम और कृष्ण दोनों का यशगान सुनता हूँ और रामायण, भागवत, गीता, शुक सागर आदि ग्रन्थों का अध्ययन भी थोड़ा बहुत किया हूँ। तब हमारे चरित्रनायक ने कहा कि तब आपकी सहज वृत्ति सगुण साकार ब्रह्म की पूजा की है। यदि ऐसा है तो आपने भजन पूजन की कोई निजी कल्पना कर ली है या कोई अपना मार्ग भजन का निर्धारित कर लिया है, जो वर्तमान परिस्थिति में आपसे नहीं हो पा रहा है। इसीलिये आप यह शिकायत कर रहे हैं कि भजन करने कि फुर्सत ही नहीं है। आपका यह कहना तो संसार वालों की भावना के अनुकूल ही है। सभी यही कहते हैं कि उन्हें भोगाभोग से फुर्सत कहाँ कि वे भजन करें। हमारे चरित्रनायक ने इसके आगे कहा कि मैं कोई पढ़ा लिखा विद्वान नहीं हूँ, पर तो भी साकार बिग्रह की पूजा के पीछे मौलिक सिद्धान्त क्या है उस पर ठण्डे दिमाक से गौर करने के लिये आपसे कहूँगा।

उन्होंने सत्सङ्ग के क्रम में यह स्पष्ट किया कि यदि कभी किसी व्यक्ति को मन्दिर बनाने की इच्छा हुई तो उसका नक्शा उसने अपनी कल्पना के अनुसार बना लिया और उसी के अनुसार उसने मन्दिर का निमाण भी कर लिया। इसके बाद वह बनारस शहर मूर्ति लाने जाता है वहाँ पर दुकानदार के पैरों के नीचे जो मूर्ति जहाँ तहाँ पड़ी रहती हैं उन्हीं में से एक को जिससे खरीदार को आकर्षण हुआ अपने घर ले आता है। उसी मूर्ति की स्थापना वेद-विधान से करता है और तब से उसी मूर्ति को, जो दूकानदार के यहाँ असम्मानित जैसी पड़ी हुई थी, भगवान् मानकर अब उसे साष्टाङ्ग दण्डवत करने

लग जाता है। जो भी श्री मन्दिर विहारी को भोग लगाया जाता है उसे "प्रसाद" कहा जाता है और वह प्रसाद बड़े आदर से परिवार, इष्ट-मित्र में वितरण किया जाता है। इसी विग्रह के सामने स्तुति प्रार्थना का गान भी रोज किया जाता है। यदि ऐसे सज्जन से पूछा जाय कि आपने मन्दिर का निर्माण तो किया पर जिसको इस मन्दिर में वास करना है उस भगवान् से आपने कोई राय सलाह ली कि उन्हें उस मन्दिर का ढाँचा पसन्द है कि नहीं अथवा जिस मूर्ति को आपने बाजार से लाया उसमें वे वास करेंगे कि नहीं। मन्दिर में जब भोग लगाया जायेगा उसको पावेंगे कि नहीं। इन प्रश्नों का उत्तर कोई क्या दे सकता है ? इन सारे प्रश्नों के मूल में मन्दिर निर्माण करने वाले सज्जन की भाव-भावना ही प्रधान रही है। वह ऐसा विश्वास पूर्वक मान लेता है कि जिस मन्दिर का निर्माण किया गया या जिस मूर्ति की स्थापना की गई उसमें भगवान् अवश्य वास करेंगे। तभी तो वह अपनी मान्यता के अनुसार बाजारों में पैरों के तले पड़ी हुई मूर्ति में साक्षात् भगवान् की भावना कर साष्टाङ्ग दण्डवत् करता है और भोग लगाये हुए भोजन को प्रसाद मानता है। अतएव, सगुण साकार पूजा में नीजी मान्यता, भाव-भावना ही प्रधान है। इसलिये कहा है "मानों तो देव नहीं तो पत्थर" इस प्रकार भगवान् राम या कृष्ण, जिससे भी आपको आकर्षण हो, उनके किसी चित्रपट वाले रूप का ध्यान कर आप सोते समय भावना करें कि मैं उन्हीं के चरणों पर दण्डवत् कर रहा हूँ तो जितने काल तक आप उनके चरणों पर इस भावना से पड़े रहेंगे वह दण्डवत् माना जायगा। जब तक ऐसी मान्यता नहीं होती तब तक आपका सोना, निजी विश्राम में चला जायगा और उतना समय बिना भगवान् के दण्डवत् के बीत गया, ऐसा कहा जायगा। अतएव, चरित्र-नायक ने निम्नलिखित चार बातों को उपदेश रूप में लेखक को समझाया—

सोना है सो दण्डवत्, भोजन है प्रसाद।
बात चीत सब भजन है, दैहिक कार्य किंकर्य ॥

उपरोक्त भाव को स्वीकार कर आचरण करने में यह कहाँ गहा गया है कि आप घर, परिवार की सेवा जो कर रहे हैं वह भजन नहीं है, या उसका त्याग कर दीजिये। प्रारब्ध भोग भी तो भगवान् के निर्णय के अनुसार ही मिलता है, बिना वाद-विवाद ये सुख दुःख भोगना भी श्री भगवान् के आदेश का ही पालन करना है। मालिक के आदेश का पालन करना मालिक का भजन नहीं तो और क्या है ? सांसारिक जेल में जो कैदी बिना वाद-विवाद किये जेल अधिकारियों की आज्ञा के अनुसार चलता है, उसे "अच्छे आचरण वाले" कैदी की श्रेणी में रखा जाता है और महीने में चार दिन की छूट उसकी सजा को अवधि में दी जाती है। इस प्रकार वह सात साल की सख्त सजा को पाँच साल की बना लेता है और अधिकारी वर्ग भी उससे प्रसन्न रहते हैं। इसके विपरीत जो कैदी जेल में भी वाद-विवाद कर झगड़ा कर लेता है उस पर नया मुकदमा जेल में चलाया जाता है और सात साल की सजा में वृद्धि कर दी जाती है। यदि अच्छे आचरण वाले कैदी का अनुकरण किया जाय और बिना भगवान् पर दोषारोपण किये सुख दुःख भोग लिया जाय, तो भगवान् का सहारा अनायास मिलता ही रहेगा और उसका ही यश गान करते रहने और पावन नाम जपते रहने से "मेटत कठिन कुअँक भाल के" भी चरितार्थ हो सकता है। भजन की गलत परिभाषा बनाकर ही लोग भजन करते हुए भी बिना भजन के रहते हैं। चरित्रनायक के इन भावपूर्ण तथ्यों से लेखक उन्हीं की कृपा से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि मैं आपके सांसारिक विपदाओं के निवारण की बात भी सोच रहा हूँ और पुनः दो मास के बाद आऊँगा तो यहीं रहकर कुछ और उपाय बतलाऊँगा। इस प्रकार एक सप्ताह रहकर वे अन्यत्र भ्रमण में चले गये।

लगभग ढाई मास के बाद हमारे चरित्रनायक पुनः मुजफ्फरपुर पधारे और इस बार भी

इन्होंने श्री गोपाल शुक्ल के ही मकान में निवास किया। बिना प्रयास ही पुनः चरित्रनायक से सत्सङ्ग का अवसर प्राप्त हुआ और इस बार उन्होंने अपने पूर्व उपदेश को लेखक से और भी स्पष्ट रूप से समझा दिया। उनके द्वारा सार बात यही कही गयी कि सगुण साकार की उपासना में उपासक के ही निष्ठायुक्त भाव से एवं सच्चे अनुराग से पूजा विग्रह भी भावावेशित हो जाते हैं और विश्वासयुक्त अनुराग की पराकाष्ठा होने पर ही उपासक के भावानुकूल रूप धारण कर भगवान् प्रगट हो साक्षात् दर्शन भी देते हैं। सभी प्रकार के उपासना विग्रहों के साथ, जिसमें लीला स्वरूप भी सम्मिलित हैं, यही उपासना सिद्धान्त लागू है। उपासक के ही भावावेश से लीला स्वरूप भी आवेशित होकर भगवान् जैसा प्रेमाचरण, बोलचाल करने लग जाते हैं।

जब सारा संसार भगवान् का है तो हर प्रकार का जीव, जन्तु एवं मानव समुदाय भी भगवान् का ही है ऐसा हृदयस्थ भाव रखना महान्-से-महान् मानव के लिये भी कल्याणकारी है। सच्चाई को स्वीकार करते हुए दैनिक आचरण उसी ढङ्ग से करने में कोई कठिनाई का प्रश्न नहीं उठता है। केवल हठी मन को बराबर इस सच्चाई की याद दिलाते रहना है। जब घर, परिवार, संसार, भगवान् का ही है तब उनकी सेवा, उनसे सम्बन्धित सम्पत्ति की रक्षा करना, उसके बचाव के लिये आवश्यकतानुसार मुकदमा लड़ना और उसके सम्बन्ध में चर्चा करते रहना या विरोधियों की निन्दा करना यह सभी कार्य तो भगवान् के ही घर, परिवार, संसार के कल्याण हेतु होता है, व्यवहारिक जगत में ऐसा मानकर चलने में तो कोई नुकसान नहीं है, और न व्यवहारिक आचरण में कोई बाधा है। प्रतिदिन होने वाले सभी कर्म भगवान् के प्रति होते हैं और कर्मार्पण उन्हीं को बराबर किया जाय तो जीव भवबन्धन से धीरे-धीरे ऐसा अभ्यास करते हुए छूट जा सकता है। लेखक गौर कर चरित्रनायक के उपदेशों की ओर ध्यान दिया तो ऐसा लगा मानो वे सरल भाषा में श्री भगवत गीता के ही निम्नांकित श्लोकों की व्याख्या कर रहे हैं—

यत्करोसि यत् श्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय यत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥१॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्योपहृतमस्नामि प्रयतात्मनः ॥२॥

इससे पता चल गया कि हमारे चरित्रनायक शास्त्र, पुराण, वेदों के सार ही ठेठ भाषा में उदाहरण के साथ इसलिये कहते हैं कि आसानी से सुनने वाले की समझ में आ जाय। लोगों को समझाने की उनकी यह अनूठी एवं सरल प्रणाली अन्त-अन्त तक कायम रही और अनेक लोगों को इससे लाभ हुआ।

इस बार भी लेखक ने अपने भौतिक दुःख दर्द की कहानी को दुहराया और चरित्रनायक से अनुरोध किया कि तत्काल इसका निराकरण कर दिया जाय। उनसे यह भी कहा गया कि श्री अलबेला बाबा की एक साल से अनुपस्थिति के कारण लेखक के मस्तिष्क पर पारिवारिक विपत्तियों का प्रभाव और भी अधिक घनीभूत होता जा रहा है। यद्यपि लेखक ने उन्हें ही गुरु मान लिया है और आज तक गुरुवत् भावना है, पर न जाने क्यों उन्होंने एक साल से लेखक से सम्बन्ध ही तोड़ लिया है। पूर्व में, वे ध्यान लगाते ही दर्शन आकर देते थे, या कोई कृपा पत्र ही प्राप्त हो जाया करता था। पर इधर अब तो ध्यान लगाने पर भी कुछ नहीं हो पा रहा है। इसीलिये निराशामय वातावरण में लेखक घुल-सा रहा है। इस बार भी चरित्रनायक ने कोई निदान संकट निवारण का नहीं बतलाया, पर, उन्होंने आश्वासन दिया कि

वे शीघ्र ही पुनः मुजफ्फरपुर आने वाले हैं। उस अवसर पर अवश्यमेव कुछ उपाय निकल जायगा। लगभग सात दिनों तक सत्सङ्ग सुख प्रदान कर अन्य स्थलों के लिये वे प्रस्थान कर गये।

सन् १९५० ई० के आषाढ़ मास में हमारे चरित्रनायक का पुनः आगमन उसी स्थल पर बिना पूर्व सूचना के हुआ। लेखक को सरकारी काम से बाहर भ्रमण में उसी दिन जाना था। आशा लगी थी कि इस बार वे क्या कहेंगे। इसलिये जाने के पूर्व लेखक ने उनका दर्शन किया, पर, उन्होंने कहा कि आपके भ्रमण से वापस आने तक मैं ठहरूँगा। आप भ्रमण में जायँ। इस बार और कोई बातचीत नहीं हो पाई। लेखक दो दिन के बाद ही भ्रमण से वापस आ गये, उस दिन लगभग दिन में दो बजे का समय था। जैसे ही उन्होंने लेखक को देखा, आदेश दिया कि "आप एक घन्टे में स्नान कर तैयार हो जायँ और मैं भी स्नान कर आपके निवास स्थान पर आता हूँ।" स्नान करने के बाद जब वे आये तो हाथ में जल भरा कमण्डल था और उनकी पूजा की झोली थी। लेखक तो खाली हाथ तैयार था। उन्होंने एकान्त स्थल में बैठने की व्यवस्था चाही। अतएव, निवास कोठरी में ही एक स्थल पर कम्बल बिछा दिया गया और हमारे चरित्रनायक उसी पर आसीन हुए।

लेखक के हृदय में तरह-तरह का कौतूहल हो रहा था। वे कौन-सा उपाय बतलायेंगे या किन मन्त्रों से अनुष्ठान करने कहेंगे, जिससे पारिवारिक संकट का नाश हो, अपने पास तो उनके द्वारा बताये गये मन्त्रादि लिखने के लिये कोई कागज कलम भी नहीं था, पर बिना उनके पूछे इन चीजों को लायी भी कैसे जा सकती थी। इसी उधेड़ बुन में जब लेखक पड़ा था, तब उन्होंने गम्भीर मुद्रा में कहा 'आप शरणागत हो जाइये। यही उपाय निर्णय हुआ है।' इसके पूर्व लेखक को शरणागतत शब्द के भाव जानने का कोई अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ था। अतएव, लेखक पूछ बैठा कि शरणागत का क्या अर्थ है, इसमें क्या करना होता है। तब उन्होंने रूपान्तर कर यह कहा कि गुरु मन्त्र ले लीजिये। इतना कह वे मौन हो गये और लेखक भी करीब दस मिनट तक मन ही सोचता रह गया कि श्री महात्मा जी से तो मैंने गुरु मन्त्र नहीं माँगा था, मैंने उन्हें कह दिया था कि श्री अलबेला बाबा को ही गुरु मानता हूँ। मैं तो केवल पारिवारिक विपत्तियों से रक्षा के लिये इनका सहारा चाह रहा था। इन सारी परिस्थितियों को जानते हुए भी उन्होंने लेखक से गुरुमन्त्र लेने की बात क्यों कही। इसी समय उनका प्रभाव प्रकट हुआ, हृदय में लेखक के ऐसा भाव उठा कि लेखक ने तो श्री अलबेला बाबा को गुरु माना, पर उन्होंने मंत्र देकर आज तक लेखक को चेला कहाँ बनाया ? श्री अलबेला बाबा तो अन्तर्यामी महात्मा हैं, हो सकता है वे जानते होंगे कि लेखक को यही महात्मा का शिष्य होना है। इसीलिये, उन्होंने अपना शिष्य लेखक को नहीं बनाया। इस निष्कर्ष पर हृदय में पहुँचते ही लेखक चरित्रनायक के प्रति बोल उठा 'गुरुमंत्र लेने में क्या करना होगा ?' इसके उत्तर में उन्होंने कान में गुरुमन्त्र बोल दिया और कहा कि हमारे अँगूठे को धोकर दंडवत् कर लें। लेखक ने वैसा ही किया और अँगूठे का धोया हुआ जल पक्के पर ही बह गया।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि लेखक को इसका कोई ज्ञान नहीं था कि गुरुमंत्र लेने में क्या करना होता है, कैसे गुरु की पूजा की जाती है और गुरु का श्री चरणामृत उतारा जाता है। लेखक जैसा बेतमीज व्यक्ति हमारे चरित्रनायक को शायद मिला ही नहीं होगा। 'हठि हठि अधम उधारे' वाली श्री रामभद्र जू की उदार विरदावली को अपना कर ही हमारे चरित्रनायक ने लेखक को बरबश अपनी ओर खींचा और अपने पावन चरणों का आश्रित बना लिया। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि शरणागति से ही सारी लौकिक समस्याओं का समाधान हो जायेगा और कुछ ही वर्षों के भीतर हुआ भी वैसा ही। अपार आत्मबल बढ़ा और एक-एक करके समस्यायें भी आप रूप से सुलझती गयीं। शत्रुओं ने शत्रुता

जोड़ी और मित्रों की संख्या बढ़ने लगी। एक और विशेषता उल्लेखनीय है। मन्त्र देने के पूर्व चरित्रनायक ने लेखक से पूछा कि आप मन्त्र बाह्य रूप से लेंगे या अभ्यन्तर रूप से। बाह्य रूप में बराबर सबों के सामने कंठी बाँधनी पड़ेगी और तिलक करना पड़ेगा, पर अभ्यन्तर रूप में पूजा के समय ही कंठी बाँधनी पड़ेगी और जल से ही तिलक का भाव कर लेना होगा। लेखक ने अभ्यन्तर वाले मार्ग को ही स्वीकार किया और मन्त्र लेने में इस प्रकार की छूट शायद लेखक को ही अब तक मिली है किसी अन्य को नहीं।

आषाढ़ पूर्णिमा को श्री गुरु पूजन समारोह भी उस साल मुजफ्फरपुर में सम्पन्न हुआ और हमारे चरित्रनायक श्रावण प्रथम सप्ताह में ही श्री अवध के लिये प्रस्थान कर गये। उनके प्रस्थान करने के एक सप्ताह के बाद ही यह सूचना मिली कि श्री अलबेला बाबा श्री हरि भक्तिन माई स्थान, श्री अवध वास कर रहे हैं। सुनते ही लेखक को उनके दर्शन की उत्कट अभिलाषा हुई, साथ ही मन में ऐसी शंका उठी कि शायद लेकर ने आतुरता वश गुरु मन्त्र लेने में जल्दीबाजी की। कम-से-कम उनके दर्शन के बाद ही उनके परामर्श से ऐसा करना उचित होता। ऐसी मानसिक स्थिति में ही लेखक ने श्री अवध के लिये प्रस्थान किया और श्री गुरुदेव के पास श्री बिवहुती भवन न जाकर श्री अलबेला बाबा के पास ही पहुँचा। दर्शन होने के पश्चात् सारी बातें उन्हें बतलायी गयीं। लेखक ने बातचीत क्रम में ऐसा कहा कि गुरुमन्त्र तो मैंने ले लिया, परन्तु हृदय में शंका अब तक बनी हुई है कि ऐसा करना उचित हुआ या नहीं। यह सुनकर श्री अलबेला बाबा ने लेखक के विचार पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा कि बिना श्री भगवान् की मर्जी के कुछ भी नहीं होता है। यह प्रसन्नता की बात है कि ऐसे महान् सन्त ने आपको अपनी शरण में ले लिया। आप तुरन्त वहाँ जाय और श्री गुरुदेव को दंडवत् कर आप उनसे हमारा दण्वत् भी कह दें। उनसे यह भी अनुरोध करें कि आज ही सन्ध्या समय श्री बिवहुती भवन में झूला के अवसर पर मुझे भी दर्शन करने की स्वीकृति दें। लेखक से उन्होंने यह स्पष्ट कहा कि गुरु स्वीकर कर, गुरु में लेकिन लगाना अपराध है। हृदय से सारी शंका को आप हटा दें। अब तो लेखक की मानसिक स्थिति भयभीत-सी हो गयी। देखें, अब श्री गुरुदेव क्या कहते हैं, ऐसा सोचते हुए लेखक श्री बिवहुती भवन स्थान आ गये। दंडवत् करने के बाद श्री गुरुदेव ने विहँसते हुए छपरे की बोली में कहा 'अपने आ गइली, बड़ा अच्छा भइल'। यह कहने पर कि श्री अलबेला बाबा के पास ठहर गया हूँ, श्री गुरुदेव ने प्रसन्न मुद्रा में उत्तर दिया कि अवध में कहीं भी ठहर गये तो कोई बात नहीं है, 'अलबेला बाबा और हम का दू बानी। यहाँ प्रसाद पा लेल जाय।'

लेखक ने श्री अलबेला का सम्बाद भी चरित्रनायक से कहा, जिसे उत्सव उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। प्रसाद पाने के बाद लेखक श्री अलबेला बाबा के पास लौट गया और सारा विवरण उनके समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि आपके गुरुदेव एक महान् सन्त हैं और बड़े उदार हैं। यों तो मैं पहले से ही श्री अवध आया जाया करता हूँ, परन्तु, उनसे निकटतम सम्पर्क नहीं हो पाया। यह भी परम सौभाग्य की बात है कि आपके माध्यम से ही आज उनसे हमारा मिलन होगा और अब उनका सानिध्य प्राप्त हो जायेगा।

सन्ध्याकाल में पूरी तैयारी के साथ श्री अलबेला बाबा झूला झूलने वाले श्री सीताराम जी आदि चारों युगल जोड़ी के लिये सुन्दरतम पुष्पों का हार, सुगन्ध एवं भोग सामग्री के साथ कई परिकरों को लिये हुए श्री बिवहुती भवन आ पधारे। उस समय श्री रामभद्र जू के प्रतीक लीलास्वरूप 'श्री मनमोहन सरकार' के नाम विख्यात थे और वे सदा भावावेश में रहकर प्रेमियों को अपार सुख दिया करते थे। उनके लीला-काल में श्री अवध के अनेकानेक सन्त श्री बिवहुती भवन झूला में सम्मिलित हुआ करते थे।

उस दिन भी झूला के अवसर पर झूले का स्थान महात्माओं से खचाखच भरा हुआ था। श्री अलबेला बाबा अपने परिकरों के साथ श्री विवहुती भवन स्थित वट वृक्ष के नीचे खड़े होकर श्री झूला झाँकी का सुख लेने लगे। श्री अलबेला बाबा के आने की सूचना लेखक ने चरित्रनायक को, जो पदगान कर रहे थे, धीरे से उनके कानों में दे दी। यह सूचना देकर जैसे ही लेखक श्री अलबेला बाबा की ओर लौटने लगा, झूलते हुए 'श्री मनमोहन सरकार'' ने इशारा कर लेखक को बुलाया और कहा 'वहाँ जो वटवृक्ष के नीचे एक महात्मा खड़े हैं, उनसे आपका परिचय है क्या ? आप उन्हें मेरे पास बुलावें।' मैंने श्री मनमोहन सरकार का सम्वाद जैसे ही श्री अलबेला बाबा को सुनाया, वे तो प्रेम विभोर हो गये, और फूल डाली लेकर जल्दी से श्री मनमोहन सरकार की ओर लपक पड़े। श्री अलबेला बाबा के आते ही श्री मनमोहन सरकार ने झूला रोक दिया और खड़े होकर श्री अलबेला बाबा से हाथ मिलाया। हाथ मिलाने के बाद ही श्री अलबेला बाबा ने साष्टांग दंडवत किया। इसी प्रकार का व्यवहार चारों भाइयों ने श्री अलबेला बाबा के साथ किया। यह एक अभूतपूर्व घटना थी, एक से अनुपम मिलन का दृश्य था जिसे सारी सन्त मंडली टकटकी लगाये देख रही थी। चरित्रनायक भी बड़ी प्रसन्न मुद्रा में हो गये। अपने हाथ का झाल दूसरे प्रेमी को धराकर वे भी श्री अलबेला बाबा से मिलने के लिये वट वृक्ष की ओर चल पड़े। श्री अलबेला बाबा भी चारों जोड़ी को दंडवत् कर यहाँ आ पहुँचे थे। दोनों सन्तों के भी मिलन का अजीब दृश्य उपस्थित हुआ। दोनों एक दूसरे को साष्टांग दंडवत करने की प्रतियोगिता में लग गये और दोनों ने ही एक दूसरे का चरण स्पर्श किया। हमारे चरित्रनायक को श्री अलबेला बाबा द्वारा आत्मसमर्पण करने का यह प्रथम अध्याय उपरोक्त अनुपम दृश्य एवं उल्लासमय वातावरण में आरम्भ हुआ। आगे चलकर अलबेला बाबा द्वारा चरित्रनायक से श्री युगल मन्त्र लेने की घटना का विवरण कुछ वर्षों के बाद उपयुक्त अवसर पर किया जायेगा। इस समय से ही दोनों सन्तों का सानिध्य बराबर बना रहा और यज्ञ कार्यक्रम को समाप्त कर अब श्री अलबेला बाबा का ध्यान श्री सीताराम विवाह महोत्सव एवं श्री झूला झाँकी से सुख लेने की ओर ही केन्द्रीभूत हो गया।

श्रृंगार अवस्था में लीला स्वरूप श्री मनमोहन सरकार से चरित्रनायक का रगड़ा-झगड़ा एवं मानलीला—लेखक को सन् १९५० ई० के आषाढ़ मास में शिष्य बनाया गया। उसी वर्ष कार्तिक मास में लेखक सपरिवार श्री अवध आया। आश्विन मास से ही लेखक के माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य श्री अवध में कल्पवास कर रहे थे और कार्तिक मास में ही एक रामार्चा सम्पन्न करा देने की स्वीकृति भी चरित्रनायक ने पूर्व में ही दी थी। इसी हेतु श्री हनुमत जन्म-जयन्ती के बाद लेखक भी श्री अवध में वास कर रहा था। इसी अवसर पर एक अनोखी घटना श्री विवहुती भवन में घटित हुई।

श्री विवाह मणिमंडप में श्री रामभद्र जू चारों भाई चारों दुलहिन के साथ श्रृंगारयुक्त होकर सिंहासनासीन थे। सन्त, महात्मा, एवं प्रेमियों से मण्डप भरा हुआ था। झाँकी के सुन्दर-सुन्दर पद गाये जा रहे थे। हमारे चरित्रनायक भी पद गान करते हुए प्रेम विभोर की अवस्था में थे। अचानक श्री भरतलाल जी रो पड़े, रंग-में-भंग हो गया। इनके रोने के कारण में स्वयं श्री मनमोहन सरकार का ही नाम लिया गया। पद-गान बन्द हो गया, चरित्रनायक बड़े ही क्षुब्ध दीख पड़े। झाल अलग रखकर मौन हो गये। चारों भाइयों ने चरित्रनायक को प्रसन्न करने का प्रयास तो किया, पर हृदय में लगे मार्मिक आघात का प्रभाव नहीं मिट सका। अन्त में स्वयं श्री किशोरीजी ने मधुर स्वर में कहा 'श्री महाराज जी। आप घटना को भूल जायँ, आगे पद गान चालू करें। तो भी, हमारे चारित्रनायक गम्भीर मुद्रा में मौन ही रहे। श्री किशोरीजी के प्रति उन्होंने धीमी आवाज में कहा, "आपके प्रीतम तो कठोर बन मुझे सताते हैं। मेरे हेतु,

क्या आप उनका त्याग करेंगी ? मैं तो घर-परिवार-संसार छोड़ दिन-रात सेवा में इसी दो चार घन्टे के आनन्द लाभ के लिये लगा रहता हूँ, पर जब इसमें भी ताला लगाया जाता है, तब मैं किसी लायक नहीं हूँ। सान्निध्य सेवा में लगे रहने पर भी दोषी बना हुआ हूँ। झाल बजाकर नाचने गाने का भी यही परिणाम मिल रहा है, तो मैं अब न गाऊँगा, न बजाऊँगा और न पास रखूँगा।" तो भी, श्री किशोरीजी ने आरती कर देने का संकेत किया। बिना आरती पद गाये ही चरित्रनायक ने आरती कर दी। सारा सन्त एवं प्रेमी समाज तो शब्दहीन बना यह दुःखद दृश्य देखता रहा, मानो आनन्द सिन्धु से निकाल कर सबों के मन-मीन को तपती चिलचिलाती धूप में फेंक दिया गया। असह्य वेदना ने सबों को धर दबाया। प्रेमी-प्रेमास्पद का यह दुःखद विवाद किसी की समझ में नहीं आ रहा था। लेखक तो भौंचक्का बना रहा। चार मास आगे शरणागति हुआ, उसका रहस्य तो समझना बाकी ही पड़ा। अब यह भक्त-भगवान के परस्पर प्रेम-व्यवहार का अद्भुत नमूना पहेली रूप में सामने प्रस्तुत कर दिया गया। एक ओर तो ऐसा लगा कि साक्षात भगवान प्रकट हैं दुलहिन-दुलहा रूप में, उन्हीं से लाड़ लड़ाया जा रहा है और दूसरी ओर वही साक्षात भगवान से यह ढिठाई-अवज्ञा एवं अपमानपूर्ण जैसा व्यवहार। लेखक का मन तो चरित्रनायक को ही क्रोधी एवं 'सनकाहा' साधु मान रहा था और बार-बार उन्हीं को कोस रहा था। आठों स्वरूप सरकार अपने-अपने आसन पर चले गये, सन्त एवं प्रेमी अपने-अपने स्थान के लिये प्रस्थान कर गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। चरित्रनायक ने निजी कोठरी में जाकर भीतर से द्वार बन्द कर लिया। प्रसाद पाने के लिये कितनी भी पुकार की गयी, न कपाट खुला और न कोई उत्तर ही मिला। लेखक भी इस पचड़े से ऊब कर सो गया।

भोर होते ही चर्चा चारों ओर सुनी गयी कि श्री महाराज जी भूखे-प्यासे, बिना कोई वस्त्रादि सामान लिये भाग गये। श्री मनमोहन सरकार समेत आठों लीलास्वरूपों की बेचैनी देखते बनती थी। सभी मनमोहन को कोस रहे थे। उनकी आत्मग्लानि भी प्रकट दीखती थी। लेखक एक दो रोज प्रतीक्षा कर अपने निजी परिवार सहित मुजफ्फरपुर वापस आ गया। मन में होने लगा कि गजब सनकाहा साधु से पाला पड़ा है। देखें, आगे जीवन कैसे व्यतीत होता है। माता-पितादि परिवार तो वहीं कल्पवास कर ही रहे थे। चिन्ता हुई कि निर्धारित तिथि को महात्माजी पूजन करा देंगे कि नहीं।

एक सप्ताह बाद मुजफ्फरपुर में चरित्रनायक का लिखा एक पत्र लेखक को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था, 'मैं तो बेढंगा साधु हूँ' ढोंगी हूँ। किसी प्रकार नाच गाकर पेट पोष रहा हूँ। आप दुःखी होकर लौट गये। मुझे क्षमा कर दें। यहाँ परिवार की यथोचित सेवा होती रहेगी।' मन में ऐसा आया कि जब रिस्ता गुरु-शिष्य का कायम हुआ तब यह क्षमा-याचना कैसा ? अब तो वे जो कुछ भी करें, रहस्य बतलाते चलें, इसी में मन को शान्ति हो, यही उचित होगा। गुरु तो गलती करते ही नहीं। उनकी सारी जीवन-लीला सुन्दर उद्देश्यों से प्रेरित होती है। ऐसी लीला क्यों हुई यह जानने की उत्सुकता बढ़ती गयी। इसी की प्रतीक्षा में समय कटने लगा।

कालान्तर में यह जानकर परम हर्ष हुआ कि श्री अवध में ही लेखक के माता-पिता आदि को भी शरणागति प्रदान कर उन्हें विदा किया गया। श्री रामार्चा भी सानन्द सम्पन्न कर दी गई। चरित्रनायक अपने समाज के साथ इसी वर्ष दिसम्बर मास में भ्रमण करते हुए श्री मिथिला अंचल में पधारे। अखिल भारतीय श्री रूपकला हरिनाम यश संकीर्तन सम्मेलन में श्री सीताराम विवाहोत्सव सम्पन्न करने के लिये दिसम्बर, अन्तिम सप्ताह में निमन्त्रित होकर वे दरभंगा में आये। लेखक भी श्री विवाहोत्सव का आनन्द लेने के लिये दरभंगा सम्मेलन में आ गया पर वहाँ भी एक दूसरी लीला का अभिनय हुआ।

दरभङ्गा सम्मेलन पण्डाल में श्री विवाहोत्सव के लिये उचित व्यवस्था के अभाव में अलग विवाह मण्डप की रचना कर श्री विवाह कलेवा उत्सव सम्पन्न----सम्मेलन के आयोजकों ने जिस दिन श्री विवाह-कलेवा उत्सव का कार्यक्रम निश्चित किया था, उसी दिन उसी समय सम्मेलन पंडाल में श्री बिन्दुजी महाराज प्रभृति विद्वान् सन्तों का प्रवचन भी रख दिया। सम्मेलन पंडाल में दोनों कार्यक्रम संचलित होना असम्भव-सा हो गया। आयोजकों के अनुसार ११ बजे रात्रि के बाद ही श्री विवाहोत्सव प्रारम्भ किया जा सकता था। यह स्थिति श्री विवहुती भवन परिवार को असह्य हो गयी। श्री विवाहोत्सव के दिन सन्ध्याकाल से ही विवाह लीला के प्रेमियों की भीड़ चरित्रनायक के तम्बू के सामने बढ़ती गयी और तरह-तरह की समालोचना होने लग गयी। कुछ लोगों ने कहा कि श्री विवहुती भवन द्वारा आयोजित लीला का रहस्य रसिक शिरोमणि श्री भगवानदास जी रूपकला तथा भक्तवर श्री रामाजी आदि ही जान पाये। यहाँ तो साक्षात् की भावना है, पर सम्मेलन के आयोजकों का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में नाटक जैसा है। नाटक तो आगे पीछे कभी भी किया जा सकता है। उसी साल से सम्मेलन में नहीं सम्मिलित होने के विचार का भी उदय हुआ। अन्ततोगत्वा, समस्तीपुर के एक प्रेमी सेठ ने अपने साथियों के साथ निकट के ही एक सामियाने में श्री विवाह मञ्च आदि की रचना कर डाली और लोगों के प्रेमवश चरित्रनायक द्वारा, सम्मेलन पंडाल न जाकर वहीं, श्री विवाहोत्सव प्रारम्भ किया गया। सम्मेलन पंडाल तो खाली पड़ गया। दर्शकगण भी यहाँ पधार गये। अन्त में सम्मेलन के मन्त्री आदि भी यहीं चले आये। बड़े ही उल्लासमय वातावरण में श्री विवाहोत्सव दो बजे रात्रि तक हुआ इसमें श्री मोदलता जी, स्नेहलता जी आदि सभी प्रेमी सम्मिलित होकर गद्गद कण्ठ से श्री विवाह गीत गाये एवं प्रेमाश्रु बहाये। अन्त में, चरित्रनायक ने कहा—"जहाँ अखिल ब्रह्माण्डनायक दुलहिन-दुलहा रूप में प्रकट हैं, वहाँ उनकी रूपसुधा का पान न कर कोई भी अन्य कार्यक्रम कैसे सफल हो सकता है? उन्हीं दुलहा सरकार ने सबों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यह तो पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट कह दिया है कि—

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पङ्कज प्रीति निरंतर। सत साधन कर फल यह सुन्दर॥

पढ़ने सुनने का सच्चा फल तो यही है कि भगवान् से प्रीति निरन्तर हो जाय तथा उनके रूप-सुधा सागर में मन निमग्न हो जाय। सम्मेलन के लोग सरकार की रूप झाँकी देखने को लालायित नहीं थे पर स्वयं दुलहिन-दुलहा सरकार तो उन लोगों को देखना चाहते थे। रूपसुधा पान कराकर उनमें प्रेम भाव का जागरण करना चाह रहे थे। अतएव सम्मेलन के आयोजकों को सरस फल खिलाने के लिये ही श्री मनमोहन सरकार ने उन्हें बुला लिया और दूसरा कार्यक्रम बन्द करा दिया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? श्री कलेवा उत्सव भी दूसरे दिन आठ बजे शाम तक हुआ। इतने सरस पद प्रेमियों द्वारा गाये गये कि लीलास्वरूप सरकार के साथ सभी उपस्थित प्रेमियों में शायद ही कोई बचा रहा जिनके नेत्रों से प्रेमाश्रु की धारा कलेवा अवधि में न बही हो। भुली बाबा ने भी जमात सहित कलेवा में रस बरसाये।

प्रीति मार्ग में लगे समालोचकों ने कहा—"श्री सीतारम विवाह-कलेवा उत्सव तो विशुद्ध प्रीति काण्ड है। इसे शुष्क वेदान्ती, या कोरे ज्ञानमार्गी क्या समझ पायेंगे? जब पढ़ने सुनने का फल ही है प्रीति का उदय, तब प्रीति काण्ड के आरम्भ होने पर ज्ञान एवं उपदेश काण्ड कैसे चलाया जा सकता है। प्रीति तो ज्ञान उपदेश का फल है। बराबर पढ़ते ही सुनते रहने से श्रेयस्कर है उसका फल भोगना, उसका रसास्वादन करना।

दरभङ्गा सम्मेलन के ठीक बाद की एक दूसरी अनोखी घटना भी उल्लेखनीय है। श्री मनमोहन

सरकार आदि लीलास्वरूपों ने हमारे चरित्रनायक से अनुरोध किया—"जब अपने ससुराल श्री जनकपुर के निकट आ गये हैं तो हम सबों को वहाँ ले चलें।" उस अवसर पर श्री भैया लक्ष्मीनिधि तथा श्री रामायणी जी महाराज आदि सन्तों की भी यही सम्मति पायी गयी। चरित्रनायक मौन होकर जमात के साथ दरभङ्गा रेलवे स्टेशन की ओर पाँव पयादे बढ़ रहे थे और लेखक भी उनके साथ स्टेशन जा रहे थे। रास्ते में चरित्रनायक ने श्री अयोध्या में घटित कार्तिक मास वाली घटना की याद लेखक को दिलायी और उन्होंने कहा—"आपका हृदय कमजोर है। आप बिना आन्तरिक भाव समझे ही श्री अवध से दुखी होकर चले आये थे। मैं यहाँ भी एक लीला करने जा रहा हूँ। आप बुरा न मानना मेरे बारे में किसी से कुछ न कहना। मुजफ्फरपुर तरफ जाने वाली ट्रेन में मैं अमुक दिशा की ओर अन्त में चढ़ जाऊँगा और आप वहीं आकर मेरे साथ हो जाना।" लेखक ने प्रश्न किया कि इस प्रकार की लीला जो आपके द्वारा की जाती है इसका रहस्य क्या है ? इसके उत्तर में चरित्रनायक ने जिन तथ्यों को प्रस्तुत किया उन्हें निम्नांकित पंक्तियों में लेखक द्वारा यथामति उल्लिखित किया जा रहा है।

चरित्रनायक द्वारा मानलीला, अनशन तथा विरह-वियोग लीला के आंतरिक रहस्य— यह स्मरणीय है कि सन् १९५० ई० के कार्तिक मास में हमारे चरित्रनायक ने दुलहिन-दुलहा की शृंगारावस्था में ही श्री मनमोहन सरकार से रूठकर पद गान बन्द कर दिया और श्री किशोरीजी के संकेत पर बिना पद गाये ही आरती कर उत्सव लीला विसर्जन कर दिया था। उस अवसर पर चरित्रनायक ने अपना स्थान छोड़कर कई मील दूर श्री सरयूजी की बालुकामय शय्या पर रात्रि-दिवस पाँच छः दिन बिताये। वहाँ वे क्या खाते थे, कैसे रहते थे, उसका विवरण तो नहीं मिल पाया, परन्तु जानकार लोगों ने बतलाया कि बिना भोजन के ही लगभग ५–६ दिनों का समय उनने बिताया। चौदह-कोशी परिक्रमा के दिन जब अनेकानेक सन्त मण्डली उस मार्ग से गुजर रही थी तब सन्तों में से ही किसी ने उन्हें श्री सरयूजी के बालू पर पड़ा देखा। कुछ सन्त उधर बढ़ गये और बड़े आग्रहपूर्वक उन्हें उस स्थान से लिवा लाये। उस समय वे बहुत शिथिल, कमजोर एवं मुरझाये से दीख पड़ते थे। इस सम्बन्ध में चरित्रनायक ने बतलाया कि जब वे (श्री मनमोहन सरकार) रूठते हैं तो उन्हें मैं मनाता हूँ और वे ही जब मुझे रुठायेंगे तब मनायेगा कौन ? सन्त रूप में अनायास वे ही तो मुझे मनाने के लिये आये। तब मैं मान गया। और उनकी सेवा में उपस्थित हो गया। उनके साथ मेरा झगड़ा ही क्या था ? केवल प्रेम का रगड़ा मात्र था। मेरे लिये प्रेम की दशा में न वे ब्रह्माण्डनायक बूझ पड़ते हैं और न चक्रवर्ती राजकुमार ही-सा दीख पड़ते हैं। वे तो हमारे अपने मालूम पड़ते हैं। एकमात्र प्रेमी रूप ही उनका दीखता है।" उस प्रेम की अवस्था में तो पारस्परिक समानता जैसा व्यवहार का हक मालूम पड़ता है। जैसे ही वे चक्रवर्ती महाराज के पुत्र के रूप में या ब्रह्माण्डनायक के रूप में बूझ पड़ेंगे वैसे ही मर्यादा का बन्धन आ जायेगा, आत्मीयता हटकर बड़े छोटे का भाव हो जायगा। इसलिये, उनका ऐश्वर्य याद रहने पर माधुर्य का उदय ही नहीं हो सकता। यह परात्पर प्रेम की वह अवस्था है जिसमें प्रेमी एवं प्रेमास्पद के बीच भेद समझना जिज्ञासुओं के लिये बुद्धि एवं विज्ञान से परे हो जाता है। उन्होंने इस सन्दर्भ में लेखक को कहा—"आप अभी नवागन्तुक हैं। आप उन्हें भगवान समझते हैं और अपने को एक साधारण जीव समझते हैं। अतएव उनके प्रति उसी प्रकार का सम्मान का भाव आप में है। आपकी भावना है कि वे भगवान हैं, सब प्रकार से बड़े हैं, चाहे जैसा भी करें, जीव को नहीं बोलना चाहिये। यह दृष्टिकोण भी अपनी जगह पर सर्वथा वांछनीय है, पर प्रेम प्रणाली एवं प्रीतिचेत्र की बातें इस दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न हैं, जो आगे चलकर श्री किशोरी जी की कृपा से समझ में आ पायेगा। तभी आप मेरी मानलीला के औचित्य को समझ पायेंगे।

आगे चरित्रनायक ने बतलाया कि उन्होंने "श्री रामभद्र जू में दोष है या वे ही दोषी हैं" ऐसा मानकर, उसके सान्निध्य का त्याग नहीं किया। बल्कि उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि दोष कुछ अपने में ही है, अन्यथा श्री मनमोहन सरकार प्रेम प्रवाह को अवरुद्ध कर रस भङ्ग नहीं कर देते। इसीलिये उन्होंने अपने को ही दण्डित किया, उपवास रहे, आत्मग्लानि एवं विरहाग्नि से जलते-भुनते ५-६ दिन बिताये। जब प्रीतम को भी उनका दूर रहना खटका तब उन्होंने उन्हें सन्त रूप में आकर बुला लिया। उक्त लीला में चरित्रनायक द्वारा न श्री मनमोहन सरकार की अवज्ञा हुई और न उसके प्रति रञ्चमात्र भी अपमान का भाव ही उदय हुआ। दर्शकों को चाहे अपने भावानुकूल जो भी बुझाई पड़ा हो।

अपने आश्रित एवं प्रेमियों के व्यवहार से भी ठेस लगने पर अनशन का प्रयोग आवश्यक प्रतीत होता था। चरित्रनायक ने कहा कि जब अपने लोग कपट का व्यवहार करते हैं, गुरु शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध भाव की मर्यादा का उल्लङ्घन कर बैठते हैं और अपने दोष को नहीं देख पाते तब उनका हृदय परिवर्तन करने के लिये भी अपने को ही दंडित करना पड़ता है। आश्रितों में जो दोषी होता है, उसके हृदय में तब गुरु के प्रति पश्चात्ताप का भाव उदय हो जाता है, वह अपने गुरुदेव के कष्ट को सहन नहीं कर पाता और अपने हृदय में कारण को टटोलता है, लोग भी उसे कोसने लगते हैं कि तुम्हारे चलते आज गरुदेव उपवास हैं या रूठे हैं। जो वाद-विवाद से सुधार सम्भव नहीं होता वह अल्पकाल में ही आत्मग्लानि से सम्भव हो जाता है। अपराध क्षमा कराने की प्रवृत्ति बार-बार जगती है तब दोषी शिष्य प्रेमी सत्य को खोलता है, अपना अपराध स्वीकार करता है और क्षमा करा लेता है।

बतलाया गया कि इस प्रकार का अनशन एक प्रकार का सत्याग्रह ही है। सत्य को प्रकट करने के लिये जो आग्रह या हठ किया जाय जो यातनायें सही जायँ, सबका उद्देश्य पावन होता है। वह है छिपाये गये सत्य को प्रकट कर कल्याण करना। सत्याग्रह द्वारा कल्याण की शिक्षा सर्वप्रथम श्री रामभद्र जू ने ही दी। दुर्मुख धोबी ने रानी सीता पर दूषण लगाया। उसका हृदय परिवर्तन कर सत्य को प्रकट करने के लिये राजा राम एवं रानी सीता दोनों ने ही अपने को दंडित किया। श्री रामभद्र जू ने श्री अवध रहते हुए तपस्वी का जीवन धारण कर लिया एवं श्री सीताजी ने तो वनवास में शरीर को तपाया ही। सारा संसार दुर्मुख को कोसने लगा। उसमें भी आत्मनिरीक्षण का भाव उदय हुआ। उसने सत्य को पा लिया और अपने दोष को समझ लिया। तब वही यह कहते हुए दौड़ा "माँ सीता निर्दोष हैं, मैं दोषी हूँ माताजी राजधानी लौट चलें, आदि।" अपने को ही दोषी मानकर दूसरे के हृदय का परिवर्तन कर, सत्य पथ पर लाना ही ऐसे सत्याग्रह का उद्देश्य है।

इस युग में रामराज चाहने वाले महात्मा गाँधी ने भी श्री रामभद्र जू के आचरण से ही सत्याग्रह को अपनाया और उसका प्रयोग कई बार अपने जीवन में बड़े ही पावन उद्देश्य से किया।

हमारे चरित्रनायक तो इस सत्याग्रह प्रणाली के सिद्ध अवतार ही थे। उन्होंने आश्रितों पर क्रोध करने के रहस्य को समझाते हुए बताया कि लोग मेरे निकट रहकर भी जड़ता या प्रमादवश भ्रम में पड़ जाते हैं। उनके हृदय में गुरु के प्रति दुर्भावना उत्पन्न हो जाती है, जो गुरुतर अपराध है। यदि, गुरु होने के नाते मैं थोड़ा बहुत ऐसे शिष्य को दंडित न कर दूँ तो भगवान् उसे दंड दिये बिना नहीं छोड़ेंगे। वे कर बैठेंगे "जो नहिं दंड करउँ खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा॥" श्री गुरुदेव के प्रति कपट या अपमान को भगवान् क्षमा नहीं करते। श्री कागभुसुण्डी के गुरुदेव के बार-बार प्रार्थना करने पर भी उन्हें चौरासी लक्ष योनि में भ्रमण करना पड़ ही गया। अतएव, शिष्य के छोटे-बड़े अपराध का दंड श्री गुरुदेव स्वयं कर दें तो भगवान् के गुरुतर दंड से उसका बचाव हो सकता है। इसी पावन उद्देश्य से ही प्रेरित

होकर चरित्रनायक आवश्यकतानुसार आश्रितों के साथ क्रोध लीला कर उन्हें गुरुतर दंड से बचाते रहे। उनका अपना निजी स्वार्थ क्या था, जिसके लिये वे रंज होते या किसी को दंडित करते ? लगातार निकट रहकर कतिपय लोगों के द्वारा अपराध बनता ही गया और चरित्रनायक के डाँट-डपट का उचित प्रभाव नहीं पड़ सका, तब वैसे लोगों को ही निज सान्निध्य का त्याग कराया गया। स्थान से निष्कासन किया गया, एकमात्र होने वाले अपराध से बचाने के लिये। दूर रहकर वे चरित्रनायक के प्रति अपराध करने से बच जायेंगे, इसी कल्याण भावना से कुछ लोगों को स्थान से हटाना पड़ा।

उपरोक्त पृष्ठ भूमि में ही लेखक ने चरित्रनायक की लीलाओं के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया। दरभङ्गा स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुँचते ही, जब लोगों ने श्री जनकपुर के लिये टिकट कटाने की बात पूछी, तब उन्होंने क्रोध धारण कर लिया, एक ओर अपना कमण्डल फेंका तो दूसरी ओर अपने गट्ठर को, और आप कुछ हटकर गम्भीर रूप से बैठ गये। श्री श्रृङ्गारी जी और श्री लीलास्वरूप एक ओर भगे और श्री भैया लक्ष्मीनिधि तथा श्री रामायणी जी दूसरी ओर चले गये। इसके बाद ही, उन्होंने अपने सामान को समेटा और अज्ञात दिशा की ओर चले गये। लेखक पीछे-पीछे जा रहा था और कुछ दूर ही से इस अभिनय को वह चुपचाप देखता रहा। श्री श्रृङ्गारी जी तथा श्री लीलास्वरूप भी पूछने आये कि श्री महाराज जी किधर गये ? लेखक के लिये कुछ भी कहना आगे से ही निषेधिक कर दिया गया था। अतएव, लेखक ने कुछ न कहकर अपना टिकट मुजफ्फरपुर के लिये कटवा लिया। श्री श्रृंगारी जी को भी यही परामर्श दिया गया कि सभी लीलास्वरूपों के साथ मुजफ्फरपुर ही चलें जहाँ रहकर चरित्रनायक की खोज की जायगी। उन लोगों ने वैसा ही किया। श्री भैया लक्ष्मीनिधि और श्री रामायणी जी श्री जनकपुर की गाड़ी में बैठ गये और लेखक पूर्व निदेशानुसार मुजफ्फरपुर ट्रेन के सबसे पिछले डिब्बे में चरित्रनायक के साथ जा बैठा। इस प्रसङ्ग में चरित्रनायक ने बतलाया कि जमात में ऐसे जिद्दी लोग थे कि उन्हें समझाकर थक जाने पर भी वे श्री जनकपुर जाने की बात नहीं छोड़ते। लीला स्वरूपों को तो उन लोगों ने ही सिखाया था। यदि स्वरूपों की सहज स्वच्छन्द भावना ससुराल जाने की होती तो पूर्व निश्चित सारे कार्य-क्रमों को रद्द करके भी उनकी आज्ञा का पालन किया जाता। चरित्रनायक दरभङ्गा सम्मेलन के बाद मुजफ्फरपुर क्षेत्र में ही कई कार्य-क्रम सम्पन्न करने के लिये वचनबद्ध थे। उन कार्यक्रमों का पालन नहीं होने से प्रेमियों को कष्ट होता और अपयश का भी भागी होना पड़ता। निज सुख को हेतु बनाकर भक्ति करना तो स्वार्थ साधन मात्र है। भगवत्-भागवत की रुचि के अनुसार चलना, उनकी प्रसन्नता की ही चिन्ता करना, सच्ची भक्ति है। इस प्रकार, चरित्रनायक का मिलन श्री स्वरूप सरकार से मुजफ्फरपुर में ही हुआ। लेखक के निवास स्थान से ही वे गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थान कर गये।

श्री परमहंस अलबेला बाबा द्वारा चरित्रनायक का आन्तरिक परिचय--सन्त मण्डली में ब्रह्माण्डनायक जैसा--शीतकाल सन् १९५१ के आरम्भ में ही श्री अनन्त अलबेला बाबा लेखक के साथ मुजफ्फरपुर में निवास कर रहे थे सन्ध्याकाल में आरती-पूजा के बाद रसूलपुर जिलानी मुहल्ले के सभी गुरुभाई, यथा श्री रामदेनी सिंह, कार्यालय प्रधान डी० आई० जी० पुलिस, श्री विन्देश्वरी सिंह, जिला स्वास्थ्य पदाधिकारी तथा श्री गोपाल शुक्ल, भूतपूर्व दारोगा आदि प्रसाद एवं सत्सङ्ग के लिये एक साथ आ गये। विनोदपूर्वक श्री शुक्लजी श्री अलबेला बाबा से बोल उठे—"बाबा ! आपही लोगों की मौज है। बिना किसी जिम्मेवारी के राजसी सामान एवं भोग आप सन्तों को सुलभ है।

उत्तर में श्री अलबेला बाबा ने बतलाया कि सन्तों की जीवनचर्या एवं कार्यप्रणाली का क्या पता आप लोगों को है ? सन्त मण्डली में स्थानधारी रमता एवं आचार्य पदधारी अनेक प्रकार के

सन्त हैं। रमता सन्तों में भी साधक, सिद्ध, सुजान, कई श्रेणी के सन्त हैं जो उत्तराखण्ड के पर्वतों में रहने वाले, यथा हिमालय आदि स्थल के, आचार्य पद प्राप्त सन्तों से नियन्त्रित होते हैं। रमने वाले सन्तों को कार्य क्षेत्र की सीमा बाँट दी जाती है। उन्हीं क्षेत्रों में भ्रमण कर कीर्तन, यज्ञादि साधनों द्वारा जनता में धार्मिक उत्थान करना पड़ता है।

श्री अलबेला बाबा ने इस प्रसङ्ग में यह भी बतलाया कि सन् १९३६-३७ ई० के लगभग, जब वे बाल साधु रहे, अपने दादा गुरु के साथ चित्रकूट धाम में छिपे-लुके महान् सन्तों की गुप्त सभा में गये थे। महात्माओं में कुछ अमर सन्त भी हिमालय तराई से आये थे। वहाँ बताया गया कि विशुद्ध कलियुग का प्रवेश कुछ वर्षों से हुआ है और धर्म का ह्रास शीघ्रता से होने लगेगा। अतएव, तपस्या में लगे भी कुछ सन्त धर्म प्रचार में लग जायँ और क्षेत्र बाँटकर कार्य करें।

श्री शुक्लजी ने पूछा—"आपका कार्य क्षेत्र क्या है?" श्री बाबा ने बताया कि उन्हें गया, पटना, शाहाबाद, पलामू आदि जिलों में धर्म प्रचार का भार है। दूसरा प्रश्न पूछा गया कि तिरहुत क्षेत्र किस सन्त के जिम्मे हैं? उत्तर मिला कि पूर्णिया जिले की अमुक नदी के तट पर निवास करने वाले "नागा बाबा" को तिरहुत का भार है। इसके बाद श्री गोपाल शुक्ल पूछ बैठे कि हम लोगों के महाराज जी (चरित्रनायक) का कार्य क्षेत्र क्या है? इस प्रश्न को सुनते ही श्री अलबेला बाबा भावावेश में हो गये। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक कहा कि आप सब अपने गुरुदेव को कुछ भी नहीं जानते हैं। जानते तो उनके सम्बन्ध में ऐसा प्रश्न नहीं किया जाता।

"वे तो सन्तमण्डल में ब्रह्माण्डनायक जैसा हैं। सारे ब्रह्माड की ही देख-रेख उन्हें करनी है। हमारे जैसे बाल साधुओं को जिला, कमिश्नरी का बँटवारा किया गया है, पर आपके गुरुदेव जैसे सन्तों से ही हम सबों को प्रेरणा प्रकाश कर्तव्य पालन में मिलता है।" इस उत्तर के बाद तो वे सभी गद्गद हो गये। कतिपय भाई तो चरित्रनायक का आन्तरिक महत्व एक सिद्ध महात्मा के श्रीमुख से सुनकर प्रेमाश्रु बहाने लगे। सबों के मुख से निकल पड़ा "जय गुरुदेव" "जय अलबेला बाबा।"

श्री ब्रह्मदेव नारायण रिटायर्ड स्टेशन मास्टर के पूर्व गुरुदेव द्वारा चरित्रनायक के महत्व पर प्रकाश—जिस समय मुजफ्फरपुर में लेखक को चरित्रनायक ने शरणागति प्रदान की, उसके पूर्व से ही उसका सम्पर्क पुराने गुरुभाई श्री ब्रह्मदेव नारायण, रिटायर्ड स्टेशन मास्टर से था। वे चरित्र-नायक से शरणागति पाने के पूर्व एक दूसरे गुरु से दीक्षित हो चुके थे। उन्हें केवल श्रीराम मन्त्र मिला था। उनके पहले गुरुदेव को नाम सिद्धि हो चुकी थी और वे बड़े ही उच्चकोटि के सन्तों में थे। कुछ वर्ष उनका सान्निध्य सुख मिलने के बाद ही उनका शरीरान्त हो गया। श्री ब्रह्मदेव नारायण ने बताया कि पूर्व गुरुदेव के शरीर त्याग के बाद वे बड़ी ही अशान्त अवस्था में रहा करते थे। आध्यात्मिक मार्ग में उनकी प्रगति कैसे, हो, इस चिन्ता में वे अधीर रहा करते थे। सन् १९३०-३१ ई० में, वे भैरोगञ्ज स्टेशन मोतीहारी जिले में पद स्थापित थे। वहीं पर एक रात्रि को वे अपने पूर्व गुरुदेव का ध्यान करते हुए विह्वल अवस्था में रो रहे थे। उसी रात्रि अल्प रात्रि रहते हुए ही उनके गुरुदेव प्रकट हुए और उन्हें बताया "मुझे जहाँ तक करना था, मैंने तुम्हारे लिये किया। अब तुम्हें एक बड़े ही महान् सन्त का परिचय बता रहा हूँ, जो भैरवगञ्ज से लगभग एक मील की दूरी पर "नबूड़ा" ग्राम में ठहरे हुए हैं। उनके साथ बाल भगवान एवं और कई सन्त हैं। उनकी असली पहचान तुम्हें उनकी छाती और पेट के अवलोकन करने से होगी। उनके वक्षस्थल से पेट तक पसरा हुआ एक काला आवरण है। यह "भृगुलता" का चिन्ह है। ईश्वरतुल्य सन्तों में ही यह चिन्ह होता है। पौराणिक कथा के अनुसार श्री भृगुमुनि ने

भगवान की छाती पर लात मारी थी, उसे भगवान ने धारण कर लिया था। वही "भृगुलता" श्यामताई लिये हुए उनके वक्षस्थल पर अंकित रहता है। महान् सन्तों के रूप में जब भगवान प्रकट होते हैं, तो वे उस चिन्ह को धारण किये रहते हैं। भोर होते ही उनका दर्शन करो और उनसे शरणागति प्राप्त कर लो। तुम्हारा अन्तिम कल्याण वे ही करेंगे।"

भोर होते हुए श्री ब्रह्मदेव बाबू "नड्डा ग्राम गये। वहाँ उन्हें चरित्रनायक का एक कुएँ पर दतवन करते हुए दर्शन हुआ। उनके वक्षस्थल पर श्यामताई लिये हुए "भृगुलता" के चिन्ह को उन्होंने अंकित पाया। यह देखते ही श्री महाराजजी के चरणों पर गिरकर उन्होंने सारा हाल सुनाया। हमारे चरित्रनायक ने मुस्कुराते हुए उन्हें स्नान कर आने को कहा। उसी दिन उन्हें "युगल मन्त्र" दे दिया गया और आगे चलकर सम्बन्ध-भाव एवं अष्टयाम सेवा भी उन्हें प्राप्त हुई। श्री मिथिला क्षेत्र में श्री ब्रह्मदेव बाबू के बाद ही श्री रामदेनी बाबू आदि सज्जन चरित्रनायक के शिष्य बने। श्री ब्रह्मदेव बाबू द्वारा उक्त घटना की जानकारी के बाद मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा आदि जिलों में शिष्यों की संख्या बढ़ती गयी। लेखक ने भी "भृगुलता" के चिन्ह पूरे गौर से स्वयं चरित्रनायक के वक्षस्थल पर देखा था। चरित्रनायक की जीवन लीला के अन्तिम काल में यह चिन्ह क्रमशः मिटता गया और अन्त में कुछ ही अंश वाम भाग में रह गया था। इस सम्बन्ध में एक बार प्रश्न करने पर चरित्रनायक ने विनोदपूर्वक लेखक से कहा "अब इसकी क्या आवश्यकता है, बहुत माहात्म्य बढ़ा, अब चलने की तैयारी है।" उस समय लेखक इसके मर्म को नहीं समझ पाया।

श्री गजना धाम में श्री अलबेला बाबा द्वारा आयोजित अभूतपूर्व श्री सीताराम विवाह महोत्सव (१९५१)—यों तो चरित्रनायक का सारा जीवन ही विवाहमय रहा, वे सदा दुलहिन-दुलहा रूप की झाँकी ही देखते रहे, पर उनके जीवनचरित्र में केवल उन्हीं विवाह-उत्सवों की चर्चा की गयी है, जिनमें कुछ विशेषता रही, कुछ दिव्य लीलायें हुईं अथवा साक्षात् सुख की वर्षा की गयी। विशेषतापूर्ण विवाह उत्सवों में से ही एक उत्सव गजना धाम में सम्पन्न हुआ।

हमारे चरित्रनायक ने कृपा कर लेखक की जन्मभूमि-ग्राम अखौरी खाप, जपला, पलामू में १९५१ ई० की बसन्तपञ्चमी के अवसर पर श्री विवाह-कलेवा का कार्यक्रम सम्पन्न करने की स्वीकृति माघ प्रथम सप्ताह में ही दी। उसी के अनुसार लेखक छुट्टी लेकर मुजफ्फरपुर से सपरिवार घर जाने की तैयारी कर रहा था। ठीक उसी समय अलबेला बाबा मुजफ्फरपुर में, गजना धाम गया जिले से पधारे, जो लेखक के ग्राम से लगभग एक मील की दूरी पर पूरब में अवस्थित है। श्री अलबेला बाबा कुछ मास से गजना धाम में ही विराज रहे थे और स्थानीय जनता को प्रेरित कर उन्होंने एक बड़े पैमाने पर श्री सीताराम विवाह एवं कलेवा उत्सव आयोजित करने का निर्णय लिया। श्री बाबा ने चरित्रनायक से अनुरोध किया कि उन्हें ही बसन्त पञ्चमी तिथि दी जाय और लेखक को फाल्गुन कृष्ण पञ्चमी तिथि मिले। चरित्रनायक ने लेखक की सहमति से बसन्त पञ्चमी तिथि श्री अलबेला बाबा को दी।

हमारे चरित्रनायक, हजारीबाग जिले से गया होते जपला स्टेशन ट्रेन से जा रहे थे। लेखक भी उसी दिन मुजफ्फरपुर से घर जा रहा था और चरित्रनायक का दर्शन उसे डिहरी-ओन-सोन स्टेशन पर ही हो गया जहाँ से जपला जाने वाली गाड़ी खुलती थी। चरित्रनायक से मिलते ही पता चल गया कि वे जपला पहुँचने की पूर्व निश्चित तिथि से एक दिन पहले ही जपला जा रहे थे। निश्चित तिथि पर शानदार स्वागत एवं जुलूश की तैयारी थी। एक दिन आगे जाने से इन्हें कौन लिवाने आयेगा, अनजान जगह में ये कहाँ ठहरेंगे, आदि बातों की उन्हें कोई चिन्ता ही नहीं थी। गजना धाम तो जपला से छः मील की

दूरी पर है, स्वागत समिति के लोग तो निश्चित तिथि को ही जपला आ सकेंगे, इन बातों की चिन्ता लेखक को भी हो रही थी। मन में हुआ "चलो, यह तो कृपा ही है जो मुझे साथ ही जाने का अवसर मिल गया। जपला मेरे लिये तो अनजान स्थल नहीं है। मैं ही सारी सुविधा की व्यवस्था परिचित लोगों की सहायता से करवा लूँगा।"

इधर चरित्रनायक से बात-चीत करने पर मालूम हुआ कि जमात से वे अलग हो गये हैं। बोल-चाल "प्रिया-प्रीतम" से बन्द है। पुनः वही विरह-वियोग की लीला चालू है। लेखक तो घबड़ाया कि नवीन स्थान के लोगों के बीच आते ही "भूख हड़ताल" और "मान लीला" प्रस्तुत किया जायेगा तो जनता क्या समझ पायेगी ? लोग तो यही कहेंगे कि "ऐसे पागल जमात को क्यों बुलाया गया, जिनमें आपस में ही मेल-जोल नहीं है ?" यहाँ भी लेखक को यही कहा गया कि जमात के लोग तो दूसरे डिब्बे में हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि चरित्रनायक किधर हैं। अतएव, जमात के लोगों को यह न बताया जाय कि चरित्रनायक भी इस गाड़ी से उतरे हैं या वे जपला जा रहे हैं। चरित्रनायक तो एक ओर जाकर बैठ गये, पर लेखक ने श्री बाबा रामविलासशरण जी श्रृंगारी तथा "आठो स्वरूप सरकार" का दर्शन किया और उन्हें जपला वाली गाड़ी के एक डिब्बे में चढ़ा दिया सान्त्वना दे दी गयी कि जब लेखक उनके साथ में है तो उन्हें कोई कष्ट न होगा। बाद लेखक आकर चरित्रनायक के ही डिब्बे में बैठ गया।

चरित्रनायक ने कहा "मुझे स्वागत की तैयारी से क्या लेना-देना है ? इसका सुख श्री अलबेला बाबा को लेना है, वे लें, और आठो सरकार की पूजा करें उन्हें ही सम्मान प्रदर्शन करें।"

जपला स्टेशन आते ही चरित्रनायक का अदृश्य हो जाना—जैसे ही गाड़ी जपला स्टेशन आयी, लेखक अपना सामान कुली के माथे पर उठाने लगा। चरित्रनायक भी पास ही खड़े थे। सामान उठाकर जैसे ही उनकी ओर देखा तो वे दिखायी ही न पड़े। सारे जमात को स्टेशन के पास ही एक मन्दिर में ठहरा कर, लेखक चरित्रनायक को स्टेशन क्षेत्र में प्रत्येक गाछ के नीचे और मुसाफिर खाने में एक घण्टे तक खोजता रहा, पर वे कहीं दीख न पड़े। बिना कोई पता पाये जमात में आकर लेखक ने स्थानीय लोगों की सहायता से, दिन-रात के आवास एवं भोजन आदि की व्यवस्था करा दी। अलबेला बाबा को भी गजना धाम सूचना भेजी गयी। वे सन्ध्या तक आ पहुँचे। उन्हें भी यह जानकर क्लेश हुआ कि चरित्रनायक प्रत्यक्ष में साथ नहीं हैं।

स्वागत एवं जुलूस का दिव्य दृश्य—दूसरे दिन ग्यारह बजे दिन तक चार हाथी, चार घोड़े, चार पालकी, जीप गाड़ी, बैण्ड बाजा तथा स्थानीय तरह-तरह के बाजे जपला मन्दिर आ गये। यहाँ से छः मील की दूरी तय कर गजना धाम पहुँचना था। छः मील का मार्ग सुन्दर ढङ्ग से सजाया गया था, मार्ग के दोनों ओर गजना धाम तक हरे-हरे पत्ते, विभिन्न रंग के झण्डे पताके से सुसज्जित किया गया था, जगह-जगह पर तोरण द्वारा एवं स्वागत फाटक सजाये गये। दीप युक्त, मंगल कलश प्रत्येक स्वागत फाटक पर सुशोभित थे। अनायास महिलायें एकत्रित होकर मंगल गान कर रही थीं। ऐसा लगा कि लोगों को यह पूरा विश्वास-सा हो गया कि श्री अयोध्या से भगवान ही दुलहा बनकर आ रहे हैं। उनकी रूप झाँकी देखने के लिये अपार नर-नारी मार्ग के दोनों ओर एक कतार बनाये दस बजे दिन से ही खड़े जपला से आने वाले मार्ग की ओर ताक रहे थे। तीन-चार स्थल में शामियाने लगा कर स्वागत मञ्च बने थे, जहाँ चारों दुलहों को सवारी से उतार-उतार कर आरती की गयी। अचानक, बिना प्रयास के सारे क्षेत्र के लोगों में श्री जनकपुर का-सा भाव उमड़ पड़ा। चारों दुलहा कभी घोड़े पर चढ़ते, कभी पालकी पर, तो कभी हाथी पर, बाजों की तुमुल ध्वनि से "निज पराइ कछु सुनिय न काना" का दृश्य

उपस्थित हो गया। श्री अलबेला बाबा तो चारों दुलहों को गोद में उठाकर सवारी पर बैठाते एवं उन्हें सवारी से उतारते। तन की कोई सुधि ही नहीं रही। लेखक के दरवाजे पर भी आठो सरकार का स्वागत आरती, पूजा आदि हुई क्योंकि जुलूस मार्ग पर ही अपना ग्राम अवस्थित था। इस प्रकार करीब दस बजे रात को जुलूस गजना धाम आया। यहाँ श्री अलबेला बाबा द्वारा फूस की कई सुसज्जित झोपड़ियाँ निवास हेतु बनवायी गयी थीं आरती-पूजा के बाद श्री दुलहा सरकार को विश्राम दिया गया।

विचार उठा कि कल दस बजे दिन से आज दस बजे रात तक पूरे छत्तीस घंटे हमारे चरित्रनायक का कहीं पता नहीं मिला। जनता तो श्री अलबेला बाबा को जानती थी, सर्वत्र 'श्री अलबेला बाबा की जय' हो रही थी। दुलहा सरकार की जय-जयकार तो श्री अलबेला बाबा ही जगह-जगह पर कराते थे। 'आज ही सगुण-तिलक की विधि होनी थी, यह न होकर श्री दुलहा सरकार विश्राम कर रहे हैं।' लेखक का हृदय इन बातों को याद कर बहुत ही व्यथित-सा हो रहा था। अतएव, उसी रात्रि को श्री अलबेला बाबा से छुट्टी माँगकर लेखक अपने घर के लिये, ग्राम के अन्य लोगों के साथ रवाना हुआ। इस समय लगभग ग्यारह-बारह बजे रात्रि हो रही थी।

श्री गजना धाम से सटे हुए पश्चिम में एक नदी दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। उस नदी का पूर्वी तट गया जिले में एवं पश्चिमी तट पलामू जिले में पड़ता है। पश्चिमी तट पर अवस्थित एक बाग में श्री अलबेला बाबा द्वारा कई वर्ष पूर्व में सम्पादित यज्ञ की एक यज्ञशाला पड़ी थी, वहीं श्री जनकपुर मान लिया गया था। वहीं श्री विवाह उत्सव की तैयारी की जा रही थी। नदी का पूर्वी तट श्री अयोध्या क्षेत्र माना गया था। इस प्रकार श्री गजनाधाम में श्री अयोध्या की सारी तैयारी थी। जहाँ श्री जनकपुर बना था उससे दक्षिण लगभग छः सौ गज की दूरी पर एक मार्ग पूरब से पश्चिम लेखक के ग्राम की ओर जाता है। उसी मार्ग से लेखक अपने ग्राम के लोगों के साथ घर वापस जा रहा था। लेखक साथियों से आपस में बातें कर रहा था 'जिन्हें मैंने गुरुदेव माना है, वे अजीब ढंग के महात्मा हैं। उन्हें पागल कहा जाय, सनकाहा कहा जाय या पहुँचा हुआ फकीर कहा जाय, कुछ समझ में नहीं आता। आज 'तिलक' की विधि होनी थी, पर वे स्वयं गायब हैं। जब एक सन्त को दिये हुए वचन का इस ढंग से वे पालन कर रहे हैं तो मेरे घर जो एक सप्ताह बाद दूसरा श्री विवाहोत्सव होने वाला है। उसका वे क्या करेंगे? छुट्टी बेकार हो जायेगी, खर्चा व्यर्थ का हो जायेगा, आदि-आदि'। व्यथित हृदय का प्रलाप लगता है सुनायी पड़ गया। छः सौ गज की दूरी पर बात-चीत की आवाज पहुँचना तो सम्भव नहीं था, तो भी श्री जनकपुर विवाहशाला की ओर से पुकारने की आवाज आयी 'रामयत्न बाबू। यहाँ आइये।" इस आवाज को अनसुनी कर आगे बढ़ा तो पुनः वही आवाज दो बारे-तिबारे आयी। लोगों ने कहा 'कोई परिचित ही तो नाम लेकर पुकार सकता है।

तीन बार पुकार हुई है। उधर देखकर ही घर चला जाय। "लेखक श्री जनकपुर क्षेत्र में आया तो देखा कि श्री विवाह मण्डप से हटकर एक व्यक्ति पश्चिम सिर कर चादर ओढ़े पड़ा है। सिरहाने एक बड़ा बोतल रखा है। दूर से लगा कि कोई शराबी शराब की बोतल सिरहाने रख नशे में बेसुध पड़ा है। उसने मुझे पुकारा क्यों? मन में यही सब सोच ही रहा था कि उनका बोलना प्रारम्भ हो गया, राम-यत्न बाबू। आप मुझे क्यों गाली दे रहे थे? आप लोगों ने तो कल से ही खूब आनन्द लिया, जुलूस के सुख का तो क्या कहना? कोई मेरी ओर देखने तक को तैयार नहीं था। श्री अलबेला बाबा तो अलबेला ही हैं। उन्हें तो मनमोहन ने आनन्द सिन्धु में डाल दिया था। वे मेरे बारे में क्या सोचते? आप लोगों

ने दिन में भोजन किया, रात में भोजन किया एवं जुलूस में जगह-जगह पर प्रसाद पाये, पर यह भी याद न हुई कि श्री महाराज जी कब के भूखे हैं, कुछ प्रसाद उन्हें भी दूँ। मुझे तो पैर में घाव हो गया है। गड़ी का तेल जपला बाजार में खरीदा। उसी को लगा रहा हूँ। जख्म के मारे ही मैं सरकार लोगों से अलग रहता हूँ। उनका स्वभाव है कि झट से आकर पास बैठ जायेंगे। डर होता है कि मुझसे सटने से उन्हें भी छूत लग जाय, क्योंकि जख्म छूत वाला मालूम पड़ता है। आपके ग्राम में जुलूस को छोड़ मैं श्री जनकपुर आकर पड़ा हूँ। आपके घर तो दस दिन बाद जाने का प्रोग्राम है। अतएव, आपके दरवाजे सरकार के साथ नहीं गया। आपकी तिथि कहाँ आयी है जो आप आज ही आग बबूला हो रहे थे ?"

शान्त होकर उनकी सभी बात सुनता रहा। छत्तीसों घण्टे वे साथ ही थे, सभी कार्यक्रम का पूरा चित्रण उन्होंने कर दिया, कहाँ-कहाँ रुके, क्या भाषण हुआ, सारा विवरण उन्होंने प्रस्तुत किया। यह जानकर गला रुँध गया, नेत्रों से आँसू छलक पड़े। मन बोल उठा "खेलत छिपके खेल खेलाड़ी, मनवाँ मन्द गँवार।" आपही जिसको जनाना चाहें, वही आपको जान सकेगा। हम लोग तो आपको, पास होने पर भी, नहीं देख सके, पर सिद्ध महात्मा श्री अलबेला बाबा ने आपको क्यों नहीं देखा ? यहाँ तो लछिमन हूँ यह मरम न जाना" वाला भाव चरितार्थ हुआ। अब तो सिद्ध हो गया कि आपको देख भी वही सकता है जिसे आप देखने दें। पास होते हुए भी इतनी दूर। भगवान की भी तो यही बात है, हृदय में निवसते हुए भी वे दिखलाई नहीं पड़ते, दूर ही मालूम पड़ते हैं। इस दृष्टिकोण से आप में और उनमें अन्तर ही क्या ?

सन्त भगवन्त अन्तर-निरन्तर नहीं "चरित्रनायक अदृश्य होने की लीला श्री विवहुती भवन के वटवृक्ष के नीचे भी बैठे-बैठे लीलास्वरूपों को छकाने के लिये किया करते थे। अचानक, जब वे दिखाई न पड़े, तब सभी लीलास्वरूप स्थान के कोने-कोने छान आवें, रोड की ओर भी देख आवें। तब श्रमकण टपकते हुए लीला स्वरूपों को वे वटवृक्ष के नीचे से ही पुकारते और बोलते "आप लोग क्यों भाग गये ? मैं तो यहीं बैठा हूँ।" हँसते खेलते यह विनोद समाप्त होता था। इस प्रकार, आध घण्टे तक मन में उठते हुए जिज्ञासा भरे प्रवाह को दबाकर एक आदमी श्री अलबेला बाबा के पास श्री अयोध्या में भेजा गया। वे तुरन्त कई पेट्रोमैक्स की रोशनी के हाथ बाजा बजवाते चरित्रनायक के स्वागत को आ पधारे। दोनों मिले, मिलन की दशा का व्यान कौन करे। चरित्रनायक को लिवा जाया गया और दो बजे रात्रि तक" "तिलक उत्सव विधि सानन्द सम्पन्न की गयी। लेखक ने तब चरित्रनायक की आज्ञा से घर आकर विश्राम किया। आगे चलकर चरित्रनायक से पूछा गया कि अदृश्य रहने की लीला आपने इस अवसर पर क्यों की ? तो उन्होंने उत्तर दिया "श्री अलबेला बाबा कहीं ज्यादा भूखे थे। मेरे प्रगट रहने से उनका सुख बँट जाता, उन्हें मेरा परिचय देना होता, मेरी भी पूजा-आरती कराते, तो इस प्रकार युगल प्रिया-प्रीतम जू और उनके बीच में एक दीवारी-सी खड़ी हो जाती। अतएव, मैंने मैदान खाली छोड़ दिया कि वे पूरा आनन्द ले सकें। महत्व उन्हीं का बढ़े। उन्हें ही पूरा सुख मिल पाये, आदि।"

श्री रामजी एवं श्री किशोरी जू के हलदी-मटकोर दो तीन दिनों में सम्पन्न करने के बाद हजारों लोगों की उपस्थिति में श्री विवाह एवं कलेवा महोत्सव सम्पन्न हुआ, बाद श्री चौथारी उत्सव भी मनाया गया। शुभ विवाह के दिन चरित्रनायक ने थोड़ा प्रवचन करते हुए कहा "उपासना मार्ग में जितनी भी साधनायें की जाती हैं, सबों का लक्ष्य होता है भगवत् प्राप्ति, भगवद्दर्शन। आज श्री अलबेला बाबा के यज्ञशाला में भगवान दुलहिन-दुलहा रूप में प्रगट हुये हैं। अतएव श्री बाबा की यज्ञ साधना पूरी हो गयी। जिस रूप से आज भगवान प्रगट हुए हैं उचित है कि श्री अलबेला बाबा अब उसी रूप में श्री

भगवान से प्रीति कर सन्त जीवन साथक करें। श्री अलबेला बाबा ने तो चरित्रनायक के शब्दों को हृदयांकित कर, आगे आने वाली जीवन-लीला अवधि में यद्यपि कार्यक्रम को प्रायः बन्द ही कर दिया और श्री सीताराम विवाह लीला की ओर उनका खिँचाव क्रमशः बढ़ता ही गया।

जीवन चरित्र लेखक के घर पर श्री विवाह कलेवा उत्सव के बाद श्री अलबेला बाबा ने पुनः श्री विवहुती भवन समाज को अपने आश्रम गजना में झूलन उत्सव का सुख लेने के लिये लाया। झूला उत्सव के बाद ही चरित्रनायक को स्टेशन जाना था।

चरित्रनायक अकेले झूला के पद गा रहे थे और श्री मनमोहन सरकार युगल जोड़ी झूल रहे थे।

झूले की जादू भरी झाँकी—श्री अलबेला बाबा को झूले की जादू भरी झाँकी ने बेसुध कर दिया। वे पागल-सा हो गये। भूमि में घोलटते हुए वे श्री मनमोहन सरकार के झूले के पास जाते, उनकी चरणधूलि लेकर वे घोलटते हुये चरित्रनायक के पास आकर इनकी चरणधूलि लेते। इस प्रकार का अभिनय एक घण्टे तक चलता रहा, तब चरित्रनायक ने झट से झूला विसर्जन कर दिया। श्री अलबेला बाबा के माथे पर हाथ दिया तब वे स्वस्थ्य-चित्त पूर्ववत् हो गये। इस सम्बन्ध में चरित्रनायक ने बतलाया कि कभी-कभी विवाह, कलेवा, झूला आदि के अवसरों पर सरकार साक्षात् उसी रूप में प्रगट-सा हो जाते हैं। प्रगट तो अंशमात्र ही होते हैं, क्योंकि यदि इसी शरीर में पूर्ण प्रकट हो जायँ तो वह शरीर ही समाप्त हो जायेगा। इस आंशिक छटा को भी श्री अलबेला बाबा जैसा सिद्ध महात्मा सहन करने में असमर्थ पाये गये। अतएव, झूला बंद करना आवश्यक हुआ, अन्यथा उसी प्रकार घोलटते-पलटते उनका शरीर तक छूट जा सकता था। उनके द्वारा अभी जीवन लीला होनी बाकी ही थी।

श्री अलबेला आश्रम से बिदा होने के पूर्व चरित्रलेखक का सारा परिवार दण्डवत् करने के लिये आ पहुँचा। उस समय श्री अलबेला बाबा भी चरित्रनायक के पास आ पंधारे। उसी समय श्री बाबा ने कहा कि अब उन पर ऐसी कृपा हो कि बारहों मास श्री विवाह महोत्सव का आयोजन प्रति पञ्चमी को जगह-जगह पर वे करें करायें और चरित्रनायक उसे सम्पादन कर दिया करें। इसके उत्तर में चरित्रनायक ने गम्भीर मुद्रा में कहा "महात्माजी! आप एक ही विवाह को अभी पचायें। सभी पञ्चमी का विवाह आपको नहीं दिया जायेगा। दुनियाँ चाहे जो समझे श्री विवाह-कलेवा-झूला-झाँकी में तो श्री साकेत-बिहारी साक्षात् सुख की वर्षा कर देते हैं, प्रगट हो झाँकी को सच्ची झाँकी बना देते हैं। अतएव, मेरे लिये विवाह उत्सव कोई नाटक या अभिनय नहीं है। जब आप भविष्य में इस लायक होंगे तो पुनः विवाह का आयोजन कर आनन्द लाभ करने का सुअवसर आपको दिया जायेगा।"

चरित्रनायक के उक्त शब्दों से तो विस्मय भरा आश्चर्य सबों को हुआ। एक सिद्ध महात्मा को भी श्री सीताराम विवाह उत्सवजनित आनन्द पचाने की शक्ति नहीं है यह बात समझ में नहीं आ पायी। जानकार ही इस रहस्य को समझ सकते हैं।

श्री गजना धाम में, श्री विवाह एवं कलेवा झाँकी के चार शिकार—(१) प्रथम घायल तो सरातू ग्राम के मिश्र परिवार का तीस-साल का एक नवजवान हुआ। न जाने उन्होंने रूप झाँकी में क्या देखा कि तीन-चार दिन तक वे रोते ही रह गये, सोना-खाना सब भूल गये। श्री अलबेला बाबा के आश्रम से बिदा होकर, चरित्रनायक श्री मनमोहन सरकार सारी जमात के साथ उक्त ब्राह्मण के घर गये। वह नवजवान आरती-पूजा करते समय और भी फूट-फूटकर रोने लगा और चरित्रनायक को जपला स्टेशन तक पहुँचाने आया। उसका सारा परिवार घबड़ा गया कि यह कौन-सा रोग नवजवान को हो गया। जपला स्टेशन पर चरित्रनायक ने कृपा कर माथे पर हाथ फेर दिया। तब, लगता है वह जादू वाली झाँकी उनकी

आँखों से ओझल हो गयी, आँसू आना बन्द हुआ, पर हृदय पर प्रभाव अमिट रहा। उसी साल श्री रामनवमी के अवसर पर वह नवजवान श्री अवध आकर चरित्रनायक से मन्त्र ले लिया और तीन-चार मास के भीतर ही उनका शरीर त्याग हो गया।

(२) दूसरा घायल हुआ बहेरा ग्राम का श्री रामव्रत सिंह। वह भी व्याकुल-सा रहने लगा। श्री रामनवमी के अवसर पर उसी वर्ष उसने भी चरित्रनायक से युगल-मन्त्र ग्रहण किया। कुछ ही वर्षों के भीतर उसका भी शरीर त्याग हो गया।

(३) तीसरे घायल हुए श्री राघवजी,जिन्होंने उसी अवसर से घर परिवार का त्याग-सा कर दिया। श्री मनमोहन सरकार की सेवा में, श्री मिथिला के "दहेजुआ" के रूप में वे साथ-साथ चले आये। इन्होंने भी आगे चलकर चरित्रनायक से युगल-मन्त्र ले लिया। अब तो वे लँगोटी अँचला लेकर श्री बाबा राघव शरण बन गये हैं। उसके बाद से उन्होंने निजी परिवार की सेवा में समय ही नहीं दिया और अब भजन-भाव में ही विचरते रहते हैं।

(४) चौथे घायल हुए श्री सुखदेव लाल, ग्राम-अखौरी खाप (जीवन चरित्र के लेखक के पिता) श्री अलबेला बाबा के आश्रम के श्री विवाह महोत्सव के बाद, जब चरित्रनायक द्वारा लेखक के घर श्री विवाह-कलेवा महोत्सव सम्पन्न हुआ, तो वे सदा श्री युगल सरकार को दूर से ही बराबर एकटक निहारते ही रहते थे। श्री विवाह-कलेवा उत्सव में उन्होंने चरित्रनायक से माँगकर स्वयं आरती की। प्रेम से अधीर हो, लोगों से छिपकर रोते ही रहे। इस प्रकार श्री विवाहोत्सव के पाँच-छः महीने के भीतर ही उनका भी शरीर त्याग हो गया। उनके सम्बन्ध में शरीरान्त होने पर चरित्रनायक को जब लेखक ने लिखा "अब तो मैं "पिताहीन हो गया, तब उन्होंने उत्तर दिया—"आपको पिता के शरीर त्याग से कष्ट तो हो सकता है, पर पिता स्थान की पूर्ति तो अब मैं ही कर रहा हूँ। मेरे हर्ष का ठिकाना नहीं है। मेरी अवस्था तो श्री नारदजी के सरीखी है, जिन्होंने एक ही चेला किया था। वह जब विमान से श्री साकेत जाने लगा, तो वे देखकर नाचने लगे कि एक ही चेला किया जो हमारे सामने सरकार के लोक जा रहा है।

इस प्रकार कई दृष्टिकोण से श्री गजना धाम का श्री विवाह-कलेवा महोत्सव अद्वितीय हुआ, जिसकी चर्चा आज तक उस क्षेत्र में होती है।

डिहरी रेलवे स्टेशन पर एक कृपा सूचक अनोखी घटना—श्री अलबेला बाबा के आश्रम से विदा होकर चरित्रनायक जपला स्टेशन आये और वहाँ से उन्होंने जहानाबाद के लिये प्रस्थान किया। लेखक भी उसी ट्रेन से मुजफ्फरपुर के लिये सपरिवार प्रस्थान किया, इस प्रकार जहानाबाद तक साथ चलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जपला में भीड़ रहने के कारण आठों लीलास्वरूप सरकार के साथ लेखक भी प्रथम श्रेणी के डिब्बे में, जो बिल्कुल खाली था, डिहरी स्टेशन तक गया। डिहरी प्लेट फार्म पर तीन-चार घण्टे तक ट्रेन के इन्तजार में रुकना था। इस कारण चार बजे सन्ध्या में आठों स्वरूप सरकार को बालभोग कराया गया। उसी समय "कमला नाम की एक लड़की जो तीन-चार साल की थी, अपनी माँ से "भात दे, भात दे" कहकर जोर-जोर से रो रही थी। चरित्रनायक का इस लड़की पर विशेष स्नेह था। वे कहा करते थे कि "यह जीव वहाँ से लौटाया गया है।" कमला की रुलाई से तङ्ग आकर उसकी माता बोल उठी "अभी भात कहाँ से आयगा ? यहाँ घर नहीं है, जो भात बना दिया जाय ? भगवान् का प्रसाद जो मीठा नमकीन घर का बना सामान है, उसी को पाओ।" कमला तो भी रोती ही चिल्लाती रह गयी और रोने की आवाज चरित्रनायक तक पहुँची, जो वहाँ से दूर हटकर बैठे थे। चरित्रनायक ने श्री मनमोहन सरकार को विनोदपूर्वक कहा कि क्या आपको कमला से प्रेम नहीं है, वह तो आपकी ही है।

अपने पास से उसे कुछ पवाइये। इतना सुनते ही श्री मनमोहन सरकार ने अपने झोले में हाथ लगाया तो "एक आलमुनियम का बड़ा कटोरा गर्म भात-दाल से भरा हुआ, दूसरे पात्र से ढाँपकर बाँधा हुआ मिला श्री मनमोहन सरकार ने कहा कि श्री महाराज जी ! यह मुसलमानी बर्तन कहाँ से आ गया, मेरे झोले में किसने रख दिया ? गाड़ी के उस डिब्बे में तो कोई था भी नहीं। तब हमारे चरित्रनायक ने कहा कि उस डिब्बे को खोलिये और उसमें देखिये कि क्या है ? श्री मनमोहन सरकार ने उस पात्र को खोलकर देखा, तब वे आश्चर्यचकित होकर बोल उठे "श्री महाराज जी ! यह तो ताजा भात और दाल भरा हुआ है, मेरा झोला गन्दा हो गया। मैं इसे फेंक देता हूँ।" चरित्रनायक ने हँसते हुए कहा कि आपकी कमला रो रो-रोकर भात-दाल माँग रही है, उसको न खिलाकर आप फेंक दीजियेगा ? चरित्रनायक ने कमला को पुकार कर कहा "आओ कमला, खा लो।" इतना सुनते ही वह दौड़ पड़ी और श्री मनमोहन सरकार के हाथ से उस कटोरे को छीन लिया। अब कमला बिहँसते हुए पूरा-के-पूरा भात-दाल पा गयी। इस प्रकार कमला की भूख लीला के बहाने एक अनोखी घटना घटित हुई, जो चरित्रनायक के ही आन्तरिक महत्व एवं कृपा का सूचक है।

देखी-सुनी घटनाओं में कुछ महत्वकारी घटनाओं के विवरण—श्री रामप्रतापशरण जी वैद्य, निवासी ग्राम तेंदुआ, जहानाबाद, जिला गया, सन् १९३९ ई० में श्री अवध में ही हमारे चरित्रनायक के शरणागत हुए। उन्हें कई वर्षों तक चरित्रनायक का सान्निध्य प्राप्त रहा। कैंकर्य एवं गुरुसेवा के तो ये मूर्तिमान रूप ही रहे। श्री वैद्यजी अभी भी वर्तमान हैं। उनने कई आँखों देखी घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया है, जिनमें से कुछ विशेष घटनाओं की चर्चा की जा रही है।

पारिवारिक कार्य भी भगवान् के ही किंकर्य हैं

शाहपुर ग्राम जहानाबाद में एक श्री विवाह-कलेवा महोत्सव का आयोजन सम्पन्न होने के बाद वहाँ के बचे सामान को बैलगाड़ी से श्री अनन्त मुनि महाराज के आश्रम पहुँचाने का आदेश वैद्यजी को हुआ। श्री मुनि महाराज के आश्रम में भी श्री रामनवाह एवं श्री विवाह का सुख लेना चाहते थे। चरित्रनायक ने हठपूर्वक उन्हें बैलगाड़ी से लौट आने का आदेश दे दिया। इच्छा न रहते हुए भी श्री वैद्यजी बैलगाड़ी से ही घर वापस हो चले। मार्ग में चिन्तित हो रहे थे कि दुनियाँ के लोग श्री नवाह-विवाह में इकट्ठे हो रहे हैं, पर मुझे सबों की नाईं भगवद्भक्ति करने में भी बाधा है। श्री गुरुदेव के ही द्वारा लौटाया जा रहा हूँ। सोच ही रहे थे कि उन्होंने चरित्रनायक के डाँट-फटकार की आवाज सुनी। इधर-उधर देखा तो कोई नहीं। उन्हें सिखाया गया "आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा," इसके बाद ही उनका मन मान गया और चित्त स्वस्थ हो गया। घर के कार्य भी तो भगवान् के ही किंकर्य हैं।

अमाङ्गलिक अन्न-वस्त्र से श्री विवाह-कलेवा करने का परिणाम

ग्राम मँझिगाँवा जहानाबाद में एक साधु आश्रम में श्री विवाह-कलेवा उत्सव सम्पन्न हुआ और वहाँ से समाज धनगावाँ ग्राम आ गया। मँझिगावाँ में ही श्री रामभद्र जू को १०४° बुखार आ गया। उसी बीमारी की अवस्था में ही श्री विवाह उत्सव सम्पन्न कराया गया था। बुखार लग ही रहा था। उसी अवस्था में लगातार धनगावाँ में भी श्री विवाह-कलेवा उत्सव का आयोजन हुआ। किसी प्रकार विवाह तो सम्पन्न हुआ, पर कलेवा के दिन श्री वैद्यजी और श्री रामजी दोनों ही बुखार से पीड़ित एक ही कमरे में पड़े रो रहे थे। हमारे चरित्रनायक श्री कलेवा मण्डप से श्री रामजी की कोठरी में आ गये और बोल उठे "तुम लोग क्यों रो रहे हो ? साधु ने किसी के श्राद्ध में प्राप्त अन्न वस्त्र को ही अपने आश्रम के श्री विवाह कलेवा उत्सव में लगाया था। महात्मा का भाव रखने के लिये विवाह कलेवा उत्सव तो सम्पन्न

करा दिया गया, पर अमाङ्गलिक अन्न वस्त्र का प्रभाव स्वयं भक्त भगवान् को भोगना पड़ रहा है। श्री वैद्य जी तो आश्चर्यचकित हो गये। उन्हें पता ही नहीं था कि साधु के अन्न वस्त्र कहाँ से आये थे। श्री महाराज जी से भी तो किसी ने नहीं कहा था। चरित्रनायक ने बतलाया कि पसीने की कमाई को ही शुद्ध भाव से ऐसे उत्सवों में लगाना चाहिये, चाहे सामान थोड़ा ही क्यों न हो। जगत् के मर्यादा का आदर स्वयं सरकार को करना पड़ता है। बेसुध भक्तों के फेरा में पड़कर, उन्हें स्वयं भी भोग भोगना ही पड़ता है।

एक सौ चार डिग्री तापमान की अवस्था में सतुआ ही औषधि बनी

जहानाबाद क्षेत्र के केन्दुआ ग्राम में श्री विवाह-कलेवा उत्सव सम्पन्न होने के बाद, पराडुई स्टेट के श्री पदुम बाबू के घर श्री चौथारी उत्सव सम्पन्न कराने का निर्णय हुआ। सारा जमात पराडुई आ गया। उधर श्री चौथारी उत्सव की पूरी तैयारी हो गयी, पर चरित्रनायक बुखार से कराह रहे थे। देखा तो बुखार का तापमान १०४° डिग्री था। श्री वैद्यजी ने मकरध्वज का प्रयोग किया। एक घण्टे तक कोई परिणाम नहीं हुआ। उत्सव के लिये दर्शकों में कोलाहल मचा हुआ था। चरित्रनायक ने थोड़ा-सा सूखा "सतुआ" लिया और फाँक गये। पानी पीते ही पन्द्रह मिनट में तापमान घट गया, वे चङ्गे हो गये और श्री चौथारी उत्सव का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

बन्दा मौज न पावही, चूक चाकरी माहिँ।

श्री अवध में श्री चित्रकूटी बाबा के आश्रम पर श्री विवाह-कलेवा उत्सव सम्पन्न करने की बात थी। श्री वैद्यजी को आदेश मिला कि वे तत्काल बाजार से आलू और दही लेकर स्थान लौट जायँ। श्री वैद्यजी श्री शृंगार हाट गये तो थोड़ी देर में दही मिलने का आश्वासन मिला। रात्रि जागरण के कारण वे श्री विभीषणकुण्ड के महात्मा श्री सीताबल्लभशरण जी के आश्रम जाकर विश्राम करने लगे, जहाँ उन्हें निद्रा आ गयी। उसी अवस्था में उन्होंने चरित्रनायक की डाँट सुनी। "वाह वैद्यजी ! अच्छा किंकर्य कर रहे हो।" नींद खुल गयी और वे दौड़कर दही की दुकान गये तो देखा कि श्री महाराजजी भी फैजाबाद से कुछ सामान लेकर लौटे हैं और वहाँ खड़े हैं। आत्मग्लानि से तो श्री वैद्यजी नीचा सिर किये कुछ बोल भी नहीं पाये। दही लेकर साथ ही स्थान लौट गये।

ग्राम जम्होर गया जिले में ट्रक पर सामान की रखवाली करते हुए गर्म-गर्म खिचड़ी मिली——अखिलभारतीय श्री रूपकला हरिनाम-यश संकीर्तन सम्मेलन से ट्रक पर लौटते हुए चरित्रनायक को जम्होर ग्राम में रात्रिकाल में रोक लिया गया। रोड पर ट्रक ठहर गया और श्री वैद्यजी को सामान की रखवाली का भार सौंप दिया गया। वे ट्रक पर ही पड़े औंघ रहे थे। वहाँ से दूर श्री महावीर स्थान में श्री सीतारामजी की झाँकी हो रही थी। रात्रि में देर तक झाँकी होती रही और यहाँ श्री वैद्यजी भूखे पड़े थे। चरित्रनायक के रूप में कोई आया और कमण्डल में भरी हुई गर्म खिचड़ी उन्हें पाने के लिये देकर चला गया। थोड़ी ही देर के बाद श्री महाबीर स्थान से भी एक सज्जन गर्म खिचड़ी लिये आये और बोले कि श्री महाराजजी ने आपके लिये भेजी है। श्री वैद्यजी ने यह कहते हुए उन आगन्तुक सज्जन को लौटा दिया कि उन्होंने अभी-अभी खिचड़ी पायी है। श्री वैद्यजी तो जान गये कि मर्यादापोषक चरित्रनायक की हीं ये दोनों लीलायें हैं। वे एक ही समय सर्वत्र रहने का सामर्थ्य रखते हैं। अनेक रूप भी धारण कर सकते हैं। श्री वैद्यजी को ऐसे कई अनुभव पूर्व में भी हो चुके थे। एक दूसरी घटना भी इसी प्रकार की हुई।

आदेशानुसार श्री वैद्यजी और श्री पंडित रघुवीरशरण जी जमात लेकर श्री अवध से गोरखपुर जा रहे थे। एक सन्त श्री परमहंसजी महाराज उस समय भण्डारी थे। श्री महाराजजी गोरखपुर जा

चुके थे। सारे जमात को श्री वैद्यजी ने मनकापुर ट्रेन में चढ़ा दिया, पर आप नहीं चढ़ पाये। ट्रेन खुल गयी, पास में एक पैसा नहीं, भूखे सो गये। रात में कोई ट्रेन गोरखपुर के लिये थी ही नहीं। वहाँ पहुँचने पर जमात के लोगों ने श्री महाराज से बतलाया कि श्री वैद्यजी मनकापुर छूट गये। चरित्रनायक रंज होकर रात्रि भर उपवास रह गये। यहाँ मनकापुर तीन बजे रात्रि को, श्री परमहंस जी भण्डारी के रूप में, गर्म खिचड़ी लिये कोई सज्जन आये और श्री वैद्यजी को उठाया। उन्होंने वस्त्र बिछाकर गर्म खिचड़ी उसी पर पा लिया और श्री परमहंसजी के साथ सो गये। भोर होने पर श्री वैद्यजी ने श्री परमहंसजी को नहीं पाया। लाचार होकर,भोर की पहली गाड़ी से ही बिना टिकट गोरखपुर के लिये,श्री महाराजजी को याद कर,प्रस्थान कर गये। कहीं कोई पूछ-ताछ नहीं हुई। गोरखपुर स्टेशन पर चरित्रनायक के ही कृपापात्र श्री रामेश्वर बाबू खड़े थे और उन्होंने वैद्यजी को साथ लेकर चरित्रनायक के पास पहुँचाया। श्री रामेश्वर बाबू के निवास स्थान पर ही उत्सव होना था। मन की बात मन ही में रह गयी। श्री वैद्यजी किसी से कुछ नहीं बोले।

श्री जनकपुर में बिना औषधि के कमला, निमुनियाँ एवं चेचक रोग से मुक्त हो गयी— सन् १९५२ ई० फाल्गुन मास में श्री जनकपुर रंगभूमि में श्री विवाह-कलेवा उत्सव का आयोजन हुआ। यहाँ पर मुजफ्फरपुर के प्रेमी श्री विन्देश्वरी बाबू डाक्टर सपरिवार, श्री रामदेनी बाबू, श्री रामयत्न बाबू सपरिवार एवं और भी अनेकों नेमी-प्रेमी पधारे। इधर श्री विवाह-कलेवा उत्सव की तैयारी में और उत्सव आनन्द में सभी विभोर थे, उधर श्री वैद्यजी को उस सुख-आनन्द से वंचित रहना पड़ा। एक लड़की कमला जिस पर चरित्रनायक का विशेष स्नेह था बहुत ही बीमार पड़ गयी। बुखार चेचक, नमुनियाँ का आक्रमण एक साथ हो गया। बचने की कोई आशा नहीं थी। श्री वैद्यजी कमला की माँ के साथ उसकी सेवा सुश्रूषा में रखे गये। पाँच छः दिन तक श्री जनकपुर में आनन्द उत्सव, झूला, झाँकी होती ही रही। जिस दिन श्री दुधमती के तट निवासी महात्माजी के आश्रम में विशेष होली का कार्यक्रम था, उस दिन कमला की हालत भोर में नाजुक हो गयी। चरित्रनायक को जो श्री दुधमती पर भोर में श्री रंगभूमि निवास स्थल से जा चुके थे, इस बात की सूचना दे दी गयी। कमला के समाचार से चिन्तित होकर, चरित्रनायक दुधमती आश्रम से हटकर एक गाछ के नीचे अकेले पड़े रहे। लगभग बारह बजे दिन में चरित्रनायक ने एक आदमी कमला के समाचार के लिये भेजा। उस समय तक कमला की बीमारी में सुधार हो चुका था। वह आँखें खोलकर ताकने लगी। चरित्रनायक ने कहलवाया कि जैसे कमला ठीक हो जाय उसे लेकर वैद्यजी और कमला की माँ श्री दुधमती पर चले आवें। बिना कोई औषधि के चार बजे सन्ध्या तक कमला बिल्कुल ठीक-सी हो गयी और चरित्रनायक के पास जाने को रोने लगी। उसे वहाँ पहुँचाया गया, जहाँ वह श्री मनमोहन सरकार और श्री किशोरीजी के साथ होली खेलने लगी, उन पर रंग छिड़काव करने लगी।

कानपुर सम्मेलन के अवसर पर शृंगार कोठरी से प्रकाश पुञ्ज उदय होने से श्री वैद्यजी बेहोश हो गये— सन् १९५८ ई० में अखिलभारतीय श्री रूपकला हरिनाम यश संकीर्तन सम्मेलन में श्री विवाह-कलेवा महोत्सव सम्पन्न करने हेतु श्री विवहुती भवन समाज के साथ हमारे चरित्रनायक कानपुर आये। सम्मेलन उत्सव के बाद श्री रामजीमल मारवाड़ी के घर पर श्री विवाह एवं कलेवा उत्सव का आयोजन हुआ। वह मारवाड़ी श्री सत्याशरण जी महाराज (श्री चक्रवर्ती दशरथ जी) का प्रेमी था। श्री स्वरूप सरकार को एक एकान्त कोठरी में ठहराया गया, जिसमें विद्युत् कनेक्शन नहीं था। शृंगार के बाद श्री लीलास्वरूप सरकार श्री विवाह मंडप पर चले गये और श्री वैद्यजी सामान की देख-रेख के लिये वहीं रह गये। अचानक रात्रि में बिजली चमकने जैसा प्रकाशपुञ्ज उस कोठरी में प्रकट हुआ, श्री वैद्यजी की आँखें बन्द हो गयीं और वे बेहोश पड़े रहे। इसी समय श्री विवाह मंडप से एक आदमी आया जिसने श्री वैद्यजी

को विवाह मंडप में भेज दिया। जहाँ श्री लीलाविहारी सरकार का वास होता है वहाँ देवलोक से दिव्य देवबालायें, प्रमदागण आदि आकर स्थल को प्रणाम करते हैं और छद्मवेष में श्री विवाह झाँकी का सुख लेते हैं। ऐसी घटना एक दो स्थल पर और हुई थी और उपरोक्त भाव ही इस सम्बन्ध में प्रगट किये गये थे।

ग्राम बरुराज जिला मुजफ्फरपुर में श्री मांडवीजी के स्वरूप की भयानक अस्वस्थता के समय अद्भुत घटना——हमारे चरित्रनायक बरुराज से कलकत्ता सम्मेलन के लिये प्रस्थान कर गये और श्री मांडवीजी के स्वरूप को बुखार के कारण श्री वैद्यजी के हवाले कर बरुराज में ही छोड़ दिया गया। स्थानीय डाक्टर का इलाज चल रहा था, पर तापमान बढ़ता ही जा रहा था। उधर कलकत्ते से बराबर समाचार पूछते हुए पत्र आते रहे और यहाँ से उत्तर भी जाता रहा। चरित्रनायक कलकत्ते में सम्मेलन के बाद भी ठहर गये। इधर बीमारी की चिन्ता श्री वैद्यजी को बढ़ती जा रही थी। एक सौ तीन डिग्री से तापमान घटता ही नहीं था। एक रात्रि को प्रायः ४ बजे भोर में, जब श्री वैद्यजी कमरे में सोये हुए थे, अचानक किवाड़ी में किसी ने धक्का दिया। बाद चरित्रनायक की आवाज सुनायी पड़ी "जल्दी किवाड़ी खोलो।" किवाड़ी खोलने को उठते श्री वैद्यजी गिरकर बेहोश हो गये। होश होने पर उन्हें कृपा-सूचक घटनाओं से आत्मबल मिला, चिन्ता दूर हो गयो। तीन चार दिन में ही श्री मांडवीजी स्वस्थ हो गयीं।

पेट फटकर अँतड़ी बाहर चले आने पर भी वैद्यजी होश में——घटना, जहानाबाद, जिला-गया की है। सन् १९५९ ई० में श्री रामप्रतापशरण जी चरित्रनायक की सहमति से श्री अवधवास कर रहे थे। उनकी बार-बार प्रार्थना यही रही कि अब उन्हें अवधवास दिया जाय। चरित्रनायक ने प्रार्थना स्वीकार तो की पर कुछ ही महीनों के बाद श्री वैद्यजी के भाई की बीमारी का पत्र चरित्रनायक के पास आने लगा। तब चरित्रनायक ने श्री वैद्यजी को जहानाबाद जाकर अपने भाई से मिलने का आदेश दिया। श्री वैद्यजी ने निवेदन किया कि 'मैंने सोच बूझकर श्री अवधवास लिया है। घर पर अनेक लोग हैं, जो भाई की सेवा-सुश्रुषा करेंगे। मैं जाकर, कर ही क्या सकूँगा ? तब चरित्रनायक ने अपने परमप्रिय सेवक शिष्य रामप्रताप जी से स्पष्ट कर दिया कि जब तक तुम जहानाबाद नहीं जाओगे, मैं भोजन नहीं करूँगा। अब तो गुरुदेव को 'भूख हड़ताल' से बचाने के लिये श्री वैद्यजी जल्दी-जल्दी सामान बाँधकर जहानाबाद चले गये। वहाँ वे, सन्ध्या में पहुँचकर, जहानाबाद वाले अपने मकान में आये। उस मकान का कुछ भाग किराये में था। किरायेदार से और उस मुहल्ले के कुछ 'कुख्यात लोगों' से श्री वैद्यजी के आने के पूर्व झगड़ा हो चुका था। जिस सन्ध्या को श्री वैद्यजी वहाँ गये, उसी रात्रि को डाकुओं का एक गिरोह उस किरायेदार की हत्या के लिये ग्यारह-बारह बजे रात्रि में आ पहुँचा। मकान के आस-पास छिपे रूप से वे लोग भीतर प्रवेश का मार्ग सोच रहे थे। भवितव्यतावश श्री वैद्यजी बाहर पेशाब करने आये, तब कुछ लोगों को इधर-उधर खड़ा पाया। उस समय तक वे पूरे स्वस्थ थे और स्वयं एक पहलवान जैसा शरीर रखते थे। उन्होंने टोका, 'तुम लोग कौन हो जो रात्रि में यहाँ खड़े हो' ? इतना सुनते ही डाकुओं ने तीन चार भाला चलाकर उनका पेट चीर डाला, उनकी अँतड़ी बाहर आ गयी, खून से लथपथ श्रीवैद्यजी कराहने लगे। श्री वैद्यजी ने अँतड़ी को पेट के अन्दर अपने हाथों से कर लिया और चमड़ा पकड़ कर पड़े रहे। मुहल्ला वालों की भीड़ लग गयी। सबसे बड़ा आश्चर्य यह था कि देखने वाले नर-नारी श्री वैद्यजी को देखकर रो पड़ते थे, हाय-हाय करते थे, पर श्री वैद्यजी न बेहोश हुये और न उन्हें पीड़ा का अनुभव हुआ। सबसे बोलते ही रह गये। जहानाबाद अस्पताल में कुछ प्राथमिक उपचार के बाद उन्हें पटना बड़े अस्पताल में लाया गया, जहाँ उनकी उचित सेवा सुश्रषा होने लगी।

उधर चरित्रनायक ने अपनी लीला प्रारम्भ की। उन्होंने श्री जगत् बाबू आदि पटना के प्रेमियों को पत्र लिखा कि मेरी गलती से वैद्यजी जहानाबाद गये और उनकी ऐसी अवस्था हो गयी। मुझे रोज समाचार दें और उनको बचाने का हर प्रकार का प्रयास करें, अन्यथा यदि वैद्यजी को कुछ हुआ तो "मैं आप सबों को अपना मुख भी नहीं दिखाऊँगा।" किसी सगे सम्बन्धी को आपत्ति में कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसी व्यवहारपटुता का आदर्श उपरोक्त रूप में एक साधारण नर के ऐसा प्रस्तुत किया गया।

शरणागत जीव और अशरणागत(बद्ध) जीव में क्या भेद रह गया ? प्रारब्ध दोनों को भोगना ही है, कंठी तिलक लगाकर भी "हाय तोबा" मचता ही रहा तो भगवान की ओर से क्या कृपा हुई ! अन्तर्यामी गुरुदेव तो भवितव्यता जान ही रहे थे, प्रारब्ध कैसे कब, कहाँ भोगना है, उसमें बाधा न पड़े। भगवान के पूर्व निर्णयों का अनुपालन हो, इसी में तो गुरुदेव ने भी सहायता की। प्रारब्ध-भोग के लिये श्री अवधवास भी छोड़ दिया गया। निमित्त बना भाई की बीमारी का एक पत्र। प्रारब्ध भोग में शरणागति के बाद भी इतनी कड़ाई रह जाती है, यह जानकर तो "धीरजहूँ कर धीरज भागा।" उपरोक्त प्रश्न अधिकांश हृदय में उठते हैं उन प्रश्नों का उत्तर चरित्रनायक द्वारा प्राप्त प्रेरणा प्रकाश के आधार पर ही प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत है।

शरणागति के पूर्व शुभाशुभ कर्मों का फल निर्णय हुआ। उसे भोगने के लिये मानव शरीर दिया गया और भोग की अवधि निश्चित की गयी। शरीर पा लेने पर जीव शरणागत हुआ तो अब से सारा भार गुरुदेव या भगवान का हुआ। पूर्व निर्णयों को खतम करना, शरणागति का उद्देश्य नहीं है। यदि प्रारब्ध समाप्त कर दिया जाय तो बिना प्रारब्ध भोग के शरीर नहीं रह सकता। बिना शरीर के गुरुदेव के बतलाये मार्ग पर चलने और भजन करने का अवसर ही नहीं रह जायगा।" "तनु बिनु वेद भजन नहिँ वरना।" शरीरधारी हो तो भजन कर सकता है अब तक जो हुआ सो हुआ, शरणागति के बाद का भविष्य सुन्दर कल्याणमय हो यही शरणागति का लक्ष्य है।

नाम जापक श्री प्रह्लादजी भगवान के अनुपम भक्त हुये। श्रीमती मीरा भी अविरल भक्तों में हैं। यातनायें प्रत्यक्ष में दोनों को असहाय दी गयी। उन यातनाओं का उन पर वैसा प्रभाव नहीं हुआ जैसा कि वैसी यातनाओं का प्रभाव साधारण जीवों के ऊपर होता है। श्री प्रह्लादजी ने आग में भी शीतलता का अनुभव किया। देखने वाले घबड़ाये पर वे नहीं घबड़ाये। यही कृपा तो श्री रामप्रतापशरण जी 'वैद्य' के ऊपर श्री गुरुदेव ने की। अँतड़ी तक बाहर आ गयी, तो भी वे घबड़ाये नहीं। देखने वाले रो रहे हैं, घबड़ा रहे हैं, पर घायल के नेत्रों में आँसू नहीं, चिन्ता नहीं। साधारण जीव के साथ ऐसी परिस्थिति में क्या होता, पाठक इसका अनुमान स्वयं कर सकते हैं। शरणागत जीव का आत्मबल एवं ज्ञान ऐसे अवसरों पर कायम रखकर संकट भोगवा दिया जाता है, यहाँ भेद है शरणागत एवं बद्ध जीव के प्रारब्ध भोग में। एक को सहारा है, एक बिना सहारा के है। एक मर्यादा भगवान का भरोसा करता है, तो दूसरा अपने प्रयास का। लाचारी में ही वह जीव भगवान की ओर ताकता है। "ज्ञानी काटे ज्ञान से मूरख काटे रोय।" शरणागत जीव का शरीरान्त के बाद जीवन पञ्च क्लेशों से मुक्त होगा पर बद्ध जीव को क्रमानुसार जन्म-मरण का चक्कर लगा ही रहेगा।

पटना अस्पताल से अच्छे होकर जब श्री वैद्यजी जहानाबाद लौट गये, तब हमारे चरित्रनायक लीलास्वरूप सरकार के साथ जहानाबाद आये तथा श्री वैद्यजी को भगवत पूजन एवं झाँकी का सुख दिया गया।

चम्पारण के जङ्गल में फल-मूल खाकर श्री नाम नवाह का आयोजन—हमारे चरित्र

एक आठ लीलास्वरूप के साथ, ग्राम भावल जिला चम्पारण में निवास कर रहे थे। एक दिन झाँकी का कार्य-क्रम हो रहा था, सरस पदों का गान हो रहा था, लोग आनन्दविभोर थे। उसी समय की बात है कि "श्री भरतलाल जी ने भावानुकूल व्यवहार नहीं किया। चरित्रनायक ने प्रसङ्ग बन्द कर आरती कर दिया।

सूर्योदय के पूर्व ही दो तीन सेर "सतुआ" की गठरी लिये चरित्रनायक पाँव-पयादे भावल से बहुत दूर चले गये पता चला कि वे बगही ग्राम होते हुये घने जंगलों में चले गये।

दो तीन दिन के बाद, श्री वैद्यजी, श्री हरिहरशरण जी, श्री सीतारामशरण जी, श्री रामचन्द्र-शरण के साथ, चार मूर्ति बगहा ग्राम जमीन देखने गये, जहाँ अपने स्थान के लिये अन्न पैदा कर श्री अवध में राग-भोग के लिये भेजे जाते हैं। बगहा पहुँचने पर ही लोगों ने बतलाया कि एक सन्त दो तीन दिन पहले जङ्गल की ओर गये हैं। जङ्गल था तो भयानक, इसमें व्याघ्र का भी उपद्रव उन दिनों था। तो भी; श्री वैद्यजो ने साथियों के साथ निर्णय किया कि जब भगवत प्रेरणा से जमीन देखने के बहाने यहाँ तक आ गये, और श्री महाराज जी का पता चल गया तो हम लोग जङ्गल में ही बढ़कर श्री महाराज जी को खोजें। इस निर्णय के बाद बेचारे बढ़ते गये तो पाया कि घने जगंल में नदी तट पर एक गाछ के नीचे चरित्रनायक की आँखें बन्द हैं, माला हाथ में है, नयनों से अश्रु प्रवाह हो रहा है। पास ही एक सूखे गाछ में आग लग गयी है वह जल रही है। नदी के उस पार एक बाघ इधर ताकते हुये दहाड़ रहा है। हिम्मत बटोर कर किसी प्रकार ये चारों प्रेमी चरित्रनायक के समीप आ गये। थोड़ी देर में उनके नेत्र खुले तो चारों को सामने पाया। चरित्रनायक बिगड़ खड़े हुये और इससे भी घने जंगल के भीतर भागने को तैयार हो गये। लोग पैर पकड़ कर रोने लगे, तब चरित्रनायक के हृदय में करुणा का भाव उदय हुआ उन्होंने कहा "आज से नाम नवाह चालू करो। भोजन नहीं मिलेगा, थोड़ा सत्तू बचा है, उसे पालो। इसके बाद जंगली फल मूल बेल गूलर, पीपर पाकर के फल खाकर समय काटना होगा।" लोगों ने कहा कि यह भी कबूल है, पर आपको छोड़कर नहीं जाऊँगा।

श्री नाम नवाह चालू हुआ। पाँच आदमी को पारी-पारी से नाम जपना था। दो तीन दिन तक किसी प्रकार नाम जप चलता गया। बाद, सेवकों के मुख के बाहर आवाज ही नहीं आने लगी। धीमी आवाज से नाम जप चलने लगा। जंगली फल मूल खाकर रहने का अभ्यास किसी को नहीं था। लगा यदि इस प्रकार पाँच सात दिन चले तो प्राणपखेरू ही उड़ जायेंगे। लोगों ने मन में सन्तोष यह कर रखा था कि यदि गुरुदेव के सामने शरीर त्याग भी हो जाय तो इससे बढ़कर सुन्दर और क्या हो सकता है? हृदय की जानने वाले गुरुदेव ने सेवकों का भाव समझते हुये नाम महाराज से क्षमा माँगी और नाम अनुष्ठान का विसर्जन कर दिया। धीरे-धीरे चलकर बगही ग्राम आ गये। अन्न प्रसाद पाकर लोगों की जान-में-जान आयी।

ऐसी भयानक कसौटी! ऐसी चमत्कारपूर्ण लीला!

बगही में चरित्रनायक ने आदेश दिया कि तुम सब वापस जाओ। वैद्यजी ने भावल चलने का आग्रह किया तब एक शर्त चरित्रनायक की ओर से लगा दी गयी "मैं थक गया हूँ, मुझे कन्धे पर कोई ले चलो तो चलूँगा" श्री वैद्यजी ने हिम्मत नहीं हारी पर एक मील के बाद ही उनके गुरुदेव गुरुनिष्ठा भाव प्रेम, से प्रसन्न होकर चरित्रनायक कन्धे से उतर गये और पैदल भावल वापस आ गये।

दिल्ली राजधानी की एक अपूर्व घटना (१९५४)

भारत सरकार के तत्कालीन उपमन्त्री श्री श्यामनन्दन मिश्र की धर्मपत्नी श्रीमती ध्रुवअली चरित्रनायक की शिष्या है। उन्हीं की बुलाहट पर चरित्रनायक वैद्यजी के साथ दिल्ली पहुँचे। उनके वर्त-

मान स्थान का रोड याद नहीं, क्वार्टर नम्बर याद नहीं, माथे पर गठरी लिये दिल्ली शहर में दो दिनों तक इधर-उधर घूमते रहे। दो दिन सतुआ ही पाते रहे, अन्तिम दिन जोर से बुखार आ गया। रोड के किनारे बेहोश पड़ गये। वैद्यजी ने सड़क पर जाने वाली गाड़ियों की ओर ताका, पर कोई परिचित नजर नहीं आया। तो भी एक गाड़ी को उन्होंने हाथ से इशारा किया, गाड़ी रुक गयी। वैद्यजी ने उपमन्त्री मिश्राजी का नाम लिया तब उक्त सज्जन ने कहा—"मैं मिश्राजी की ओर ही जाऊँगा। गाड़ी में आप सब आ जाइये।" इसी बेहोशी की अवस्था में श्री श्यामनन्दन मिश्र के बँगले पर आ गये। अल्पकाल में बुखार जाता रहा, वहाँ रामार्चा पूजन समाप्त कर श्री अवध वापस आ गये।

बाबा श्री राघवशरण जी "दहेजुआ" के रूप में श्री अलबेला बाबा आश्रम गजनाधाम में विवाहोत्सव के बाद श्री विवहुती भवन मनमोहन सरकार की सेवा में आ गये। कुछ वर्ष उनका समय चरित्रनायक के सान्निध्य सेवा में व्यतीत हुआ। उनने आँखों देखी घटनाओं का कुछ विवरण दिया है।

१९५३ की अगहण शुक्ल पञ्चमी प्रधान विवाहोत्सव के अवसर पर चरित्रनायक बड़े ही चिन्तित देख पड़े। पूछने पर उन्होंने कहा प्रधान विवाह पंचमी आ चली। अभी तक पैसा का कोई प्रबन्ध नहीं है, देखें, श्री किशोरीजी की क्या मर्जी है ? दो दिन के बाद उन्होंने राघवजी से सामान लाने के लिये फैजाबाद चलने को कहा। जब राघवजी स्नान कर रासकुञ्ज चरित्रनायक के पास आये तो उनने चरित्रनायक को बिछावन के नीचे से आवश्यकतानुसार रुपये निकालते देखा। उन्हें उत्तर मिला कि अभी कर्जा लेकर काम चला रहा हूँ। उस साल बड़े ही धूमधाम से प्रधान विवाहोत्सव, कलेवा एवं भंडारा सम्पन्न हुआ। यदि यही मान लिया जाय कि कर्जा लेकर ही उत्सव हुआ तो कर्जे के लिये कहीं जाना तो नहीं पड़ा। बैठे ही रुपये का प्रबन्ध हो गया। यही क्या कम आश्चर्य की बात है ? श्री किशोरीजी की कृपा तो सदा ही बरसती थी।

भगवान् ने बैलगाड़ी भेज डाकू से जान-माल की रक्षा की

नया गाँव सम्मेलन मुंगेर की बात है। श्री राघवजी चरित्रनायक के आदेशानुसार लीलास्वरूपों के साथ श्री अवध से नया गाँव के लिये प्रस्थान कर सुलतानगञ्ज स्टेशन आ गये। यहाँ से नया गाँव १० मील की दूरी पर था। स्टेशन से नया गाँव जाने के लिये एक गाड़ीवान ने कहा कि वह गाड़ी से नया गाँव पहुँचा देगा। ४ मील आने के बाद उसने गाड़ी से सबों को बक्सा सामान सहित खेसारी खेत में उतार दिया।" चुपचाप रहो नहीं तो लूट लिये जाओगे" ऐसी धमकी देकर वहाँ से वह चला गया। इधर अँधियाली होने लग गयी। भय से सभी रोने लगे।

इतने में एक सज्जन एक बैलगाड़ी लिये आये। उसमें दो दिव्य सुन्दर लड़की चढ़ी हुई थीं। इस सज्जन गाड़ीवान ने पूछा आप लोग कहाँ जाने वाले हैं ? सारी बात बताने पर उसने कहा आप लोग जल्दी चढ़ आइये, मैं लड़कियों के साथ नव गाँव विवाह ही देखने जा रहा था। जब भगवान् ही यहाँ पड़े हैं तो विवाह ही क्या देखूँगा ? लड़कियों को उतारकर भगवान् सब लोग गाड़ी में सामान के साथ चढ़ गये। जल्दी-जल्दी गाड़ी चलाकर गाड़ीवान ने लगभग आठ बजे रात में नया गाँव सबों को पहुँचा दिया। सामान उतारकर ठहरने वाली कोठरी में रखा जाने लगा। सब रखने के बाद एक कम्बल की खोज हुई, उसे देखने गाड़ीवान के पास राघवजी आये तो न गाड़ी थी, और न गाड़ीवान था। केवल कम्बल अलग रखा पड़ा था। दूसरे दिन चरित्रनायक श्री रामप्रतापशरण जी वैद्य के साथ दिल्ली से आये और घटना सुनकर अश्रु बहाने लगे।

मात्र पाँच पसेरी सामान में सारे जनकपुर के सन्तों का भण्डारा

जनकपुर धाम में करपात्रीजी के स्थान में विवाह उत्सव किया गया। उस अवसर पर चरित्रनायक ने सारे जनकपुर के सन्तों को महाप्रसाद पाने का निमन्त्रण दिलवा दिया। मात्र पाँच पसेरी चावल दाल से ही सारे जनकपुर के सन्त पाकर चले गये और तो भी भंडार बचा रहा।

श्री हरिहरशरण जी चरित्रनायक के विरक्त शिष्यों में एक हैं। इन्हें भी कई वर्षों तक चरित्र-नायक का सान्निध्य प्राप्त था, और बराबर सेवा में रहा करते थे। उनने बताया कि १९४६-४७ में वे शिष्य हो गये। कुछ काल बाद चरित्रनायक, श्री वैद्यजी और हरिहरशरण जी को लिये हुए उनकी जन्मभूमि उनके पिता से मिलने गये। श्री हरिहरशरण जी के पिता से चरित्रनायक ने कहा कि मैं आपका पुत्र आपको अर्पण कर रहा हूँ। जब तक आप जीवित हैं, ये आपकी सेवा में रहें। पिता ने उत्तर दिया कि जब आपसे भक्ति हो गयी है तो आपही की सेवा में रहना इन्हें उचित है। तो भी चरित्रनायक ने पिताजी की आँख बनवाने का भार श्री हरिहरशरण जी और वैद्यजी को देकर भावल जिला चम्पारण के लिये प्रस्थान किया।

चरित्रनायक के जाने के २२ दिन बाद ही श्री हरिहरशरण जी के पिता ने पेंचिस रोग के कारण शरीर त्याग कर दिया। उनका श्राद्ध करने के कई दिनों के बाद श्री हरिहरशरण जी भी भावल आ पहुँचे। चरित्रनायक को दण्डवत् करने गये तो वे बिना पूछे ही बोल उठे—"तुम्हारे पिताजी कैसे चले गये ? क्या हो गया था, आदि।" चरित्रनायक को तो लगता है, यह पता हो ही गया था कि श्री हरिहर शरण जी के पिता जाने वाले हैं। अतः अन्तिम सेवा करने का अवसर उन्होंने उनके पुत्र श्री हरिहर-शरण जी को प्रदान किया।

एक दूसरे अवसर पर श्री हरिहरणशरण जी ने बताया कि वे चरित्रनायक को जहानाबाद से केन्दुआ लाने के लिये रेलवे स्टेशन गये। चारों ओर घूमकर हर मार्ग में उन्होंने ढूढ़ा पर चरित्रनायक नहीं दीख पड़े। लाचार लौटकर जब वे केन्दुआ आये तब उन्होंने चरित्रनायक को प्रसाद पाते देखा। श्री हरिहरशरण जी भी प्रसाद पाने लगे तब चरित्रनायक प्रसाद पाकर उठ गये और उन्होंने प्रश्न किया कि तुम किधर गये जो मैं नहीं मिला। बिना दंडवत् किये मैं कैसे उत्तर दूँ यह विचार हृदय में आ गया। हृदय के भाव परखते हुए चरित्रनायक ने कहा प्रसाद पाकर दंडवत् कर लेना। कोई संकोच न करो।

इस प्रकार चरित्रनायक के अन्तर्यामीपन से श्री हरिहरशरण जी बड़े ही प्रभावित हुए। श्री हरिहरशरण जी ने श्री अवध की एक घटना की भी चर्चा की है। शायद यह घटना १९५७-५८ ई० की है।

अगहण शुक्ल पंचमी विवाहोत्सव के पूर्व "तिलक विधि" के लिये पैसे नहीं थे। श्री महाराज जी ने वैद्यजी और हरिहरशरण से इसकी चर्चा करते हुए कहा स्थान में जो पात्र वा सरकार लोगों का कीमती जेवर है उसे लेकर फैजाबाद चलो। बेंचकर ही रुपये प्राप्त करें और उत्सव का कार्य पूरा करें। यह अनुभव हुआ कि बेचने से भी पर्याप्त पैसा नहीं आ सकेगा। यही बातचीत हो ही रही थी कि डाक प्यून ४०) चालीस रुपया सिन्दूर लगा हुआ हनुमानगढ़ी का और २००) दो सौ रुपया मनीआर्डर पंडित शीतलदीन फर्रुखाबाद का लिये आया। डाकिया ने बताया ४०) चालीस रुपये तो हनुमानगढ़ी से आया है और दो सौ रुपये पंडित शीतलदीन ने भेजा है। सभी आश्चर्यचकित हो गये। उसी दिन दोपहर के बाद पंडित शीतलदीन भी आ गये। समाचार पूछ-ताछ करते हुए चरित्रनायक ने कहा कि जब आपका मनीआर्डर आ गया तब मुझे शंका हुई कि आप नहीं आवेंगे। पंडितजी ने कहा—"मैंने कोई मनीआर्डर

नहीं भेजा है।" इसके बाद बात वहीं बन्द कर दी गयी। इसकी चर्चा का निषेध कर दिया गया।

श्री रामरूपशरण जी प्रथम में एक गृहस्थ शिष्य के रूप में शरणागत हुए पर श्री निधन के बाद ये भी विरक्त शिष्य हो गये। इन्होंने भी कई वर्षों तक चरित्रनायक के निकट रहकर सेवा की है। कई आँखों देखी घटनाओं का विवरण इनने भी प्रस्तुत किया है जिन्हें क्रमानुसार उल्लेखित किया जा रहा है।

एक समय की बात है कि चरित्रनायक श्री अवध से अकेले सवेरे चलकर श्री बाबाजी के आश्रम चले गये। उन्होंने श्री रामरूपशरण से यह कह रखा था कि वे अमुक तारीख को टीकरी आ जायेंगे, वहीं आकर मिलना। तदनुसार श्री रामरूपशरण जी टीकरी स्टेशन उक्त तिथि को भोर में आ गये। पर भोर में ट्रेन से चरित्रनायक के नहीं आने के कारण वे टीकरी आश्रम गये। वहाँ उन्होंने देखा कि श्री महाराज जी रात की गाड़ी से ही आ गये थे। चरित्रनायक ने रुँधे हुए स्वर में श्री रामरूपशरण जी को कहा—"मेरे नेत्र बन्द हो रहे हैं। अब अकेला सूझता नहीं है। सीवान ट्रेन चढ़ने के समय मैं इंजिन की ओर चला जा रहा था उसी समय दो बालकों ने मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहा बाबा! उधर इञ्जिन है, चलो यात्री के डिब्बे में चढ़ा देता हूँ। उन लोगों ने ट्रेन में तो चढ़ा दिया पर जब मैंने डिब्बे में उन्हें पुकारा तो लोगों ने बताया कि वे बालक चले गये। मेरे लिये सरकार को कष्ट हो रहा है। अब से एक साथी यात्रा में रहना आवश्यक है।

एक दूसरी घटना भागलपुर जिले में रघुनाथपुर स्टेशन से लौटने के समय की है। भागलपुर के महात्मा श्री भोलीबाबा के आश्रम में जाना था। बस से रवाना होकर लगभग चार बजे सन्ध्या में भोलीबाबा के आश्रम से कुछ दूरी पर ही एक कूप के पास उतर गये। चरित्रनायक ने कहा कि वहीं पर स्नान कर कुछ पा लिया जाय, बाद में देखा जायगा।" श्री स्वरूप सरकार तो वहाँ जा ही चुके हैं।" मेरी आवश्ययता तो कल होगी।" स्नान करने के बाद दोनों ने ही "सतुआ" प्रसाद पा लिया। कूप के पास ही धान के खेत में एक आम का गाछ था। महीना पौष का था। खेत की जमीन कुछ गीली ही थी। गाछ के नीचे खेत की गीली जमीन पर ही आसन बिछाकर चरित्रनायक लेट गये और रामरूपशरण जी को भी लेटने को कहा। सोने पर नीचे से "आग की गर्मी" जैसी मालूम पड़ी। गीला होने पर भी आसन धँसा नहीं मानों सूखी जमीन पर ही सोने का भान हो रहा था। कूप के पास तो जाड़ा का अनुभव भी हुआ पर गीली जमीन पर गर्मी का अनुभव हो रहा था। किसी प्रकार सूचना भोलीबाबा को मिली। श्री खाकी बाबा के शिष्य श्रीमन्नारायणजी एक लालटेन लिये खोजते आये और हठपूर्वक दोनों को लिवा गये।

शान्ति कुञ्ज में प्रकाश पुञ्ज का दर्शन

श्री अवध में एक बार हमारे चरित्रनायक शान्तिकुञ्ज में एक चारपाई पर पूरब सिर कर रात्रि में विश्राम कर रहे थे। श्री रामरूपशरण जी तीन बजे रात्रि को ही उठ गये और चरित्रनायक का चरण चापने लगे। वहाँ और कोई नहीं था। अचानक मधुर झनकार की आवाज के साथ प्रकाश पुञ्जमय कोई आया जो चरित्रनायक की परिक्रमा कर पश्चिम की ओर चला गया। उस समय ज्योतिपुञ्ज के कारण श्री रामरूपशरण की आँखें बन्द हो गयीं पर झनकार की आवाज से उनने अनुभव किया कि वह दिव्य रूप किधर से आया और किधर गया। चरित्रनायक ने उन्हें चेतावनी दे दी कि इस घटना को किसी से न बतायी जाय।

भावल आश्रम जिला चम्पारण से चितौनी घाट होकर चरित्रनायक श्री अवध जा रहे थे। नाव धारा के वेग में बह चली, मल्लाह भी घबड़ाया। लीलास्वरूपों में श्री रामजी ने कहा—"महाराज

जी अब तो बह जायँगे।" उत्तर मिला "सभी आँखें बन्द कर लो।" ऐसा करते ही नाव एक खम्भे में आकर फँस गयी। दूसरी नाव आकर सबों को तट पार पहुँचा दिया।

१९६७-६८ की बात है सरैयाँ आश्रम में अचानक ९ बजे रात को श्री महाराज जी ने कहा "भँटवा के लिये तुरन्त प्रस्थान करना आवश्यक है" श्रीरामरूपशरणजी ने सामान का गट्ठर बनाकर उठा लिया और श्री महाराजजी अपना कमण्डल लेकर चल पड़े। आश्रम के पुजारी राजवल्लभ बाबू रिक्शा खोजकर थक गए। इसीलिये श्री महाराज जी पैदल ही चल पड़े। श्री रामाजी की समाधि से लगभग दो सौ गज आगे सीवान रोड पर चले गये। उसी समय समाधि की ओर से एक आवाज सुनायी पड़ी 'श्री महाराज जी पैदल दस बजे रात को जा रहे हैं। तुरन्त एक रिक्शा भेजो।' आवाज होते ही एक काला नवयुवक पैन्ट पहने हुए रिक्शा के साथ श्री महाराजजी के पास आ गया और उसने रिक्शा पर चढ़ने का आग्रह किया। श्री महाराजजी ने पूछा—'क्या किराया देना होगा ?' उत्तर मिला 'स्टेशन पहुँचकर जैसी मर्जी होगी कीजियेगा' स्टेशन पहुँचकर सामान उतारते ही रिक्शा वाला पैसा लेना स्वीकार नहीं किया। प्रसाद रूप में केवल दो केला उसने लिया।

श्री रामरूपशरण जी ने १९६९ ई० की एक घटना का विवरण देते हुए बताया कि विदुपुर से श्री महाराज जी ने श्री अवध के लिये पडरौना होते हुए प्रस्थान किया। गोरखपुर स्टेशन पर गाड़ी चार नम्बर प्लेटफार्म पर लगी और उन्हें प्लेटफार्म नम्बर एक पर जाना था। उनके पास तीन गट्ठर थे। श्री महाराज ने कहा कि एक गट्ठर रामरूपजी ले लें, दूसरा गट्ठर श्री बलरामजी लें और तीसरा गट्ठर श्री महाराजजी स्वयं माथे पर लेंगे। इस प्रकार प्लेट-फार्म नम्बर एक पर चला जाय। इस पर श्री रामरूप जी ने कहा कि बिल्कुल रास्ता अँधेरा है, आप यहीं एक गट्ठर के साथ ठहर जायँ और हम लोग दो गट्ठर लेकर प्लेटफोर्म नम्बर एक पर जा रहे हैं। वहीं गट्ठर रखकर एक आदमी लौट आयें और आपको साथ लेकर जायेंगे। श्री महाराज जी ने इसे स्वीकार किया। जब श्री रामरूपशरण श्री महाराज जी के पास उन्हें लिवाने के लिये आ रहे थे, उन्होंने देखा चार सुन्दर किशोर अवस्था के बालक श्री महाराज जी को हाथ पकड़े लिये आ रहे हैं और उनमें से एक अपने सिर पर गट्ठर भी लिये हुए है। श्री रामरूप जी ने उनसे गट्ठर ले लिया और चरित्रनायक के साथ चारों बालक प्लटफार्म नम्बर एक तक आये। जब चरित्रनायक ने उन्हें देने के लिये प्रसाद निकालने लगे तब सबों के देखते-देखते वे चारों अन्तर्धान हो गये। किसी ने नहीं देख पाया कि ये किधर गये। श्री महाराज जी तो रोते ही रहे कि उन्हें प्रसाद तक नहीं दिया जा सका। सिवाय चारों भाई के जिनका ध्यान चरित्रनायक नित्य किया करते थे। और दूसरा कौन हो सकता था।

श्री परमानन्द शरण (नुनूबाबू) ग्राम दिलावरपुर, हाजीपुर जिला मुजफ्फरपुर ने भी कतिपय आँखों देखी महत्व सूचक घटनाओं की चर्चा की है।

प्रेत योनि से उद्धार

पहली घटना टीकरी आश्रम की है। चिन्ताग्रस्त अवस्था में नूनूबाबू को हमारे चरित्रनायक ने टीकरी आश्रम में रख दिया था। वहाँ मन्दिर बनकर तो तैयार था पर तब तक ठाकुरजी को नहीं पधराया गया था। वैशाख मास की चाँदनी रात थी। रात्रि में ब्यारु के बाद चरित्रनायक के साथ सभी छत पर विश्राम कर रहे थे। तीन बजते ही हमारे चरित्रनायक तो नीचे उतर आए पर नूनूबाबू वहीं सोये रह गए। लगभग चार बजे रात्रि को हवा की जोर से आवाज मिली और उसी आवाज के साथ एक महिला साफ वस्त्र धारण किये नूनूबाबू के सिरहाने आ गयी। उन्होंने देखा कि वह तो उनसे परिचित एक ग्राम की हा

विधवा औरत है जिसका शरीर तीन चार साल आगे छूट गया था। वह धार्मिक संस्कार की तो थी पर आचरण से कर्मकांडी स्वभाव की थी। भेदभाव रखती थी। चार साल आगे उसने चरित्रनायक के चरणामृत का अपमान किया। इसका कारण भेदबुद्धि ही थी। उस औरत ने नूनूबाबू से कहा 'तुम्हारे गुरुदेव तो भगवान् हैं, उन्हें तारणे की शक्ति है। मुझे 'प्रेतयोनि' मिल गयी है। अपार कष्ट में हूँ। उनका तुम पर विशेष स्नेह है। उनसे प्रार्थना कर दो, मेरा उद्धार हो जाय। मैं ठहर नहीं सकती। उद्धार होने पर मैं तुम्हें पुनः कष्ट देने नहीं आऊँगी 'यह कहते ही पूर्व जैसी आवाज के साथ वह आकाश मार्ग से चल पड़ी। नूनूबाबू कुछ तो भयभीत हुए पर तुरन्त वे नीचे उतर गए और चरित्रनायक से एकान्त में सब बता दिया। चरित्रनायक आँख बन्द कर कुछ काल मौन रहे, बाद उन्होंने उस घटना को छिपा रखने का आदेश दिया। उसके बाद वह महिला पुनः कभी नहीं नूनूबाबू के पास आयी। लगा जैसे उसका प्रेतयोनि से उद्धार हो गया। सम्भवतः यह घटना १९६४ की है।

श्रीमती चन्द्रकला सहचरी का साकेत गमन

उपरोक्त घटना के एक मास बाद तक नूनूबाबू टीकरी में ही थे। हमारे चरित्रनायक श्री विवहुती भवन के भण्डारी श्री रामरतनशरण के साथ टीकरी एक मास के बाद पुनः आए और वहीं ठहर गए। एक दिन प्रातःकाल लगभग चार बजे एकान्त में चरित्रनायक ने नूनूबाबू से कहा 'क्या कहूँ श्री अवध में तो चन्द्रकला सहचरी का शरीर छूट गया। मैं अभी उसे निज लोक पहुँचाकर लौटा हूँ। एक स्थल पर गुरु की आवश्यकता होती है। खैर इन बातों को गुप्त ही रखना' प्रकाश होते ही उन्होंने भण्डारीजी से कहा आप स्थान जायँ और वहाँ जो आवश्यक कार्य मालूम पड़े उसकी व्यवस्था कराकर लौट आना' आदेशानुसार श्री भण्डारीजी श्री विवहुती भवन आए और चन्द्रकला सहचरी के शरीर त्याग की बात उन्हें मालूम हुई' सारी व्यवस्था कर उन्होंने रामघाट मृतक शरीर को लाकर उचित अन्तिम संस्कार करा दिया। बाद सूचना लेकर सन्ध्या में वे टीकरी आ गए।

चरित्रनायक ने लोक व्यवहार के जैसा समाचार जानते ही शोक प्रकट किया तथा तरह-तरह का प्रलाप करने लगे। किसी ने मुझे पूर्व में सूचना तक नहीं दी, स्थान में लोग जिम्मेवारी का भाव रखते ही नहीं आदि।'

भगवान् केवल प्रेम से रीझते हैं उपासक चाहे जिस अवस्था में रहकर उनसे प्रेम करे

भावल आश्रम जिला चम्पारण की बात है। श्री रामायणजी को ही दुलहिन-दुलहा का प्रतीक बनाकर उन्हें ही शृंगारयुक्त कर श्री विवाह-कलेवा उत्सव चरित्रनायक कर रहे थे। केवल 'लावा' छीटने के लिये उनने ग्राम से दो विप्र बालकों को बुलाया। उन्हें माथे में दो पीत साफी धारण कराकर लावा छीटने की विधि को सम्पन्न कराया। नूनूबाबू को यह अच्छा नहीं लगा। विप्र बालकों का शरीर धूल-धूसरित था, केवल पीत साफी धारण कराने से क्या वे पवित्र हो गए ? उनके हृदयस्थ भाव को जानते हुए चरित्रनायक ने बाद नूनूबाबू से पूछा 'सूझहिँ राम चरित मणि माणिक, गुप्त प्रकट जहँ जो जेहिँ खानिक।' का क्या भाव है ? इस चौपाई की व्याख्या करते हुए चरित्रनायक ने समझाया कि प्रेम करने वाला धूल-धूसरित हो गन्दा हो, वा साफ हो, इससे भगवान् को कोई प्रयोजन नहीं। हृदय में विमल प्रेम है, अनन्यता है 'इसी से वे रीझते हैं' रीझत राम सनेह निसोतें' प्रेम मार्ग में अपने स्थूल शरीर की सजावट, वा 'टीम-टाम' पर ध्यान देना अनावश्यक है। नूनूबाबू को आश्चर्य यह हुआ कि पद गान में लीन रहते हुए भी चरित्रनायक ने उनके हृदयस्थ भाव को जान लिया।

हाथ से स्पर्श करते हुए ही भयानक बुखार शान्त हो गया

टीकरी रेलवे स्टेशन पर नूनू एवं श्री अवधविहारी बाबू के सामने बुखार से कराहता एवं कँपता हुआ एक 'पोयन्ट्स मैन' चरित्रनायक के चरणों पर माथा रखा। उसके माथे पर ज्योंही चरित्रनायक ने हाथ रखा, वह तत्काल चंगा हो गया। बार-बार चरित्रनायक का जय-जयकार करने लगा।

झूला अवसर पर गाते हुए पद में वर्णित सारा दृश्य उपस्थित हो गया

श्री अवध में झूला लगा था। श्री सियाअली भी उस अवसर पर वर्तमान थीं। पद गाते-गाते चरित्रनायक को आवेश हो गया,पद में वर्णित प्रकृति की झाँकी,विद्युत की चमक,मोर पपीहा की बोली आदि पाँच मिनट तक सबों को दिखाई,सुनाई पड़ा। चमक से तो लोगों की आँखें तक बन्द हो गयीं। झूला स्थल का सारा दृश्य लोप होकर पद-वर्णित दृश्य वहाँ पाँच मिनट तक उपस्थित हो जाना एक अभूतपूर्व घटना थी।

श्री अवध की ही एक दूसरी घटना इस प्रकार की है कि केशव बाबू श्री किशोरीशरणजी को 'ओक' की बीमारी झूले के अवसर पर हो गयी थी। वे हमेशा जोर से 'ओ-ओ' किया करते थे। उसी अवस्था में वे झूला स्थल पर आ गए। चरित्रनायक ने उनकी आवाज 'ओ-ओ' सुनकर जोर से डाँटते हुए बोल उठे 'यहाँ लोग पद गान सुनने आए हैं। तुम्हारा 'ओ-ओ' सुनने नहीं आए हैं। अपना गाना बन्द करो।' बन्द करो आदेश सुन रोग ने भी चरित्रनायक की बात मान ली। उनका ओक बन्द ही हो गया।

चरित्रनायक की चरणामृत ने जान बचायी

नूनू बाबू ने बताया दिलावरपुर में श्री जगदम्बाजी के स्थान में अखण्ड नाम जप चल रहा था। लोगों को आनन्द मिल रहा था, अतएव अधिकांश लोगों ने चाहा कि नाम जप अवधि बढ़ायी जाय। उधर रामा बाबू ने विरोध किया कि लोगों का पूरा सहयोग नहीं है, अतएव वे अखण्ड नाम जप बन्द करा देंगे। इसी-वाद विवाद के बाद वे नूनू बाबू के घर तक आ पाये। किसी ने उनका गर्दन अचानक ऐसा ऐंठ दिया कि गर्दन तो टेढ़ा हो ही गया, लगा कि वे प्राणहीन हो गये। तत्काल चरित्रनायक का चरणामृत दिया गया तब सजीवता आ गयी उन्हें होश हो गया।

श्री नूनू बाबू ने बताया कि एक बार उनके बड़े भाई श्री अवधविहारी बाबू से रंज होकर कहीं चले गये थे। कई दिनों से उनका पता न था, इसीलिये परिवार में बेचैनी थी। उसी समय श्री रघुनाथ प्रसाद, पुलिस इन्सपेक्टर के गुरु "शक्ति उपासक" नवद्वीप में काली इष्ट किये हुये दिलावरपुर आए हुए थे। कई गण्यमान्य लोगों के साथ नूनू बाबू उनके दर्शन को गये। उन्होंने नूनू बाबू को पास में बैठाना चाहा तो इनने निवेदन किया "आप सन्त हैं—साथ कैसे बैठ सकता हूँ ? इसी के उत्तर में उक्त सन्त ने कहा "सन्त सच्चा तो एकमात्र तुम्हारे गुरुदेव हैं।" तुम्हारा भाई रेलवे गार्ड है जो घर से भाग गया है। उसी के सम्बन्ध में पूछने आये हो "बिना पूछे ही उनने हृदयस्थ बातें बतायी और यह भी कहा कि तुम्हारा भाई कहाँ है, इस बात को तुम्हारे गुरुदेव जानते हैं। वह जनकपुर नाम अनुष्ठान में है। एक सप्ताह में आ जायेगा।"सन्त की सारी बातें सच्ची निकली। भाई भी लौटकर आ गए।

करनौती ग्राम में चरित्रनायक ने श्री अवधविहारी बाबू की रक्षा शत्रुओं से की

एक बार श्री अवधविहारी बाबू अपने ससुराल करनौती गये हुये थे। अपने स्वार्थ में उन्हें बाधक समझकर ससुराल के कुछ लोगों ने रात्रि भर अवधविहारी बाबू को मारने का प्रयास किया। जब-जब लोग मारने को तैयार होकर आते तब-तब श्री महाराज जी सपने आकर लोगों को जगा देते। जगने की आवाज सुनकर शत्रु भाग जाते।

लेखक के भाई कमलाकान्त की मृत्यु का चरित्रनायक द्वारा पूर्व संकेत

जीवन चरित्र लेखक का भाई कमलाकान्त ने १९५१ में मुजफ्फरपुर कौलेजियट स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की। उसका नाम आई० ए० में लिखाने का प्रश्न खड़ा हुआ। चरित्रनायक जून मास में मुजफ्फरपुर पधारे और समाज सहित यहीं ठहर गये। कई दिनों तक युगल झाँकी का कार्य-क्रम चलता रहा।

एक दिन प्रातःकाल उनसे कमलाकान्त के नाम लिखाने का शुभ मुहूर्त पूछा गया। उन्होंने उत्तर दिया "यदि इस वर्ष नाम न लिखाया जाय तो क्या हर्ज है ? कमलकान्त का स्वास्थ्य अच्छा नहीं मालूम नहीं पड़ता। कुछ मास वह लीलास्वरूप सरकार की सेवा में रहकर उनको पढ़ाने की सेवा करें। किन्तु यह तभी सम्भव होगा जब वह स्वयं सेवा में रहना स्वीकार करें। उसे विवहुती भवन समाज के साथ ही भ्रमण में या श्री अवध में रहना पड़ेगा।" बात हो ही रही थी कि कमलाकान्त भी आ गया। उसने सहर्ष सेवा में रहना स्वीकार कर लिया। कुछ दिन क्षेत्रीय भ्रमण में रहकर वह आषाढ़ गुरु पूर्णिमा के बाद अपना निजी साज समान लिये हुए चरित्रनायक के साथ श्री अवध के लिये प्रस्थान कर गया।

कुछ ही दिन के बाद श्री अवध से कुछ शुभचिन्तकों ने सम्वाद दिया कि कमलाकान्त का सारा शरीर सूज गया, अण्डकोष सहित जाँघ पैर भी फूल गया है। वह किसी प्रकार घुसुककर चलता है। खड़े होकर चलना भी बन्द है। आसन पर पड़ा रहता है। वहीं कुछ भोजन मिल जाता है। माता-पिता का सबसे छोटा लड़का, उसके साथ माँ का अति प्रेम, उसे लेखक के बिना उन लोगों से पूछे महात्माओं के जमात में भेज दिया जहाँ न कोई सेवा करेगा और न कोई दवा-दारू की ही व्यवस्था होगी ऐसा सोचते ही व्याकुलता उमड़ पड़ी। वह भी कभी घर से बाहर नहीं जाता था पर कैसे उसकी मति मारी गयी। यह सोच ही रहा था कि चरित्रनायक को एक पत्र लिखूँ वा स्वयं जाऊँ कि परिवार में दूसरी विपत्ति की सूचना मिली। घर से तार आ गया कि पिताजी चल बसे। लेखक ही परिवार का प्रधान था, इसलिये सारे परिवार के साथ जन्मभूमि के लिये तुरन्त प्रस्थान करना पड़ा। चरित्रनायक को पिता निधन की बात लिखते हुए उनसे अनुरोध किया गया कि वे किसी प्रकार कमलाकान्त को जन्मभूमि पहुँचवा दें अन्यथा माताजी को क्या बताया जायेगा। पिताजी की मृत्यु की बात कमलाकान्त को न बतायी जाय, यह भी उनसे प्रार्थना की गयी। कमलाकान्त के घर आने पर यह पता चला कि उन्होंने लेखक का पत्र उसी को दे दिया और उसने ही उन्हें सुनाया। कमलाकान्त तो फूट-फूटकर रोने ही लगा पर साथ ही चरित्रनायक भी उसके साथ रोते रह गए।

उन्होंने कमलाकान्त को यह कहा कि तुम घुसकते हुए श्री सरयूजी चले जाओ। तिलादि ले जाकर पिता का ध्यान करते हुए "तिलांजली" दे देना। पत्र श्री सरयूजी को अर्पण कर प्रार्थनापूर्वक कह देना कि पत्र पर आप ही कृपापूर्वक विचार करें आदेशानुसार तिलाञ्जली देकर कमलाकान्त स्थान वापस आ गया।

श्री सरयू माहात्म्य प्रकट हुआ

कमाकान्त ने बताया कि वह चार पाँच दिन में पूर्ववत हो गया। शरीर का सूजन समाप्त हो गया चलने फिरने की शक्ति हो गयी, भोजन सब कुछ करने लगा। तो भी चरित्रनायक ने कहा तुम घर नहीं जाते तो अच्छा होता।"

घर पर माताजी की ममता से लाचार होकर लेखक ने कमलाकान्त को घर भेजने के लिये एक तार चरित्रनायक के पास भेजा। लाचार उन्होंने दशगात्र विधि के एक दिन पूर्व कमलाकान्त को एक

साधु के साथ मुगलसराय भेजवा दिया। वहाँ उसे जपला जाने वाली गाड़ी में चढ़ा दिया गया। जपला से वह चार मील पैदल चलकर घर आ गया। तो भी चरित्रनायक ने उसे समझा दिया कि श्राद्ध खतम होते तुम श्री अवध आ जाना। पर माताजी ने कहा साधु के स्थान में उसकी सेवा न हो पायेगी। लेखक ने हर प्रकार से माताजी को समझाया कि कमलाकान्त को श्री अवध जाना उसी के लिये हितकारी है। इतना प्रभाव जानने के बाद भी रोकना ठीक नहीं। छुट्टी बीतते ही लेखक मुजफ्फरपुर लौटकर कमलाकान्त को श्री अवध रहने का खर्च भी मनिआर्डर से भेज दिया। रुपया मिलने पर भी ममता से अन्धी माता ही काल बन गयी। कमलाकान्त की बीमारी लौटने लगी और उसे लेकर माताजी डाल्टेनगञ्ज लेखक के छोटे भाई के पास डाक्टरी इलाज के लिये आ गयी। उसी साल अगहण मास में कमलाकान्त की मृत्यु डाल्टेनगञ्ज में ही हो गयी। भवितव्यता इतनी प्रबल हो गयी कि किसी का कुछ न चला। रो-धोकर भाई एवं पिता का वियोग सहना पड़ा।

यह स्पष्ट है कि हमारे चरित्रनायक को कमलाकान्त की मृत्यु का पूरा पता था। इसीलिये उन्होंने उसे अपने पास रखकर भोग भोगवाना चाहा था। हो सकता है कि धाम में रहते-रहते उसे आयु दान भी दिया जा सकता था जैसा कि उपरोक्त विवरण से झलकता है। कहा भी है "जो न करे लकीर, सो करे फकीर" पिताजी की गति के सम्बन्ध में चरित्रनायक ने क्या कहा इसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

और भी ऐसे उदाहरण लेखक को देखने को मिले जिससे पता चला कि शरणागत बद्ध जीव के जन्म, मृत्यु वा गति मुक्ति का पता हमारे चरित्रनायक को बराबर था। जिसका वे संकेत मात्र ही किया करते थे। भ्रमवश लोग उनके प्रति निष्ठायुक्त भाव नहीं रख पाते थे, और न वे प्रकट ही होना चाहते थे।

संसार के साथ संसार के जैसा, सरकार (भगवान) के साथ सरकार जैसा

१९५२-५३ में चरित्र लेखक के साथ कुछ विभागीय बखेड़ा चल रहा था, कैफियत तलब पर उत्तर माँगा गया था। विचार हुआ जबाब में सीधे सत्य बातें बता दी जायँ। चरित्रनायक से हमारे शुभ-चिन्तकों ने पूछा कि क्या करना उचित होगा। उनने उत्तर दिया "संसार के साथ संसार के जैसा, सरकार (भगवान) के साथ सरकार के जैसा" जब दूसरे लोग मिथ्या अभियोग लगाकर तङ्ग करना चाहते हैं तो उत्तर भी कायदा कानून को विचार करते हुए ही देना चाहिये। नौकरी में रहकर कैसे चलना है इसका भी मार्ग प्रदर्शन चरित्रनायक के उपरोक्त संक्षिप्त उपदेश से हो गया। उत्तर उसी ढङ्ग से दिया गया। विभाग ने धनबाद के लिये स्थानान्तर कर दिया।

चरित्रनायक का धनबाद में प्रथम शुभागमन

मुजफ्फरपुर से वियोग होने के बाद हमारे चरित्रनायक पहले-पहल धनबाद १९५३ ई० के अक्टूम्बर मास अन्तिम सप्ताह में पधारे। जमात में आठ लीलास्वरूप एवं महात्मा मिलाकर १४ व्यक्ति थे। अभ्यागत अतिथि का जैसा सत्कार होता है लेखक के परिवार की ओर से किया जाने लगा। तीन शाम के बाद ही चरित्रनायक ने कहा 'आपने अतिथि रूप में मेरा सत्कार किया। मालपूआ, पूड़ी मिठाई आदि खूब खिलाया। अब मुझे आपके पास रहने का कोई हक नहीं है। पहुनाई तीन ही शाम उचित है।' कई महीनों के वियोग के बाद ऐसा कड़ा रुख देखकर लेखक तो भीतर-भीतर रो पड़ा। उनसे अनुरोध किया कि 'जिस प्रकार आप कम-से-कम एक सप्ताह दर्शन एवं सत्संग का सुख दें, वह मुझे कबूल है।'

शिष्य की सारी सम्पत्ति का स्वामी गुरुदेव हैं

यह सुनते ही उनने कहा कि अपने कोठार (सामान कोठरी) की चाभी आप मेरे भण्डारी को दें। हमारी रुचि से वह सामान निकालेगा और बालभोग, भोजन की व्यवस्था करेगा। लेखक ने आदेश पालन किया पर हृदय में शंका हुई कि ऐसा व्यवहार क्यों ?

चरित्र लेखक की अन्तरस्थ शंका का समाधान करते हुए चरित्रनायक ने समझाया कि शरणागति का केवल शब्दार्थ जानने से कल्याण नहीं होगा। गुरुदेव क्या है ? शरणागति होने पर दैनिकजीवन में आन्तरिक परिवर्तन क्या हुआ यह जान लेना आवश्यक है। श्री रामभद्र जू भगवान् के अन्य अवतारों में सर्वोपरि हैं। वे मूल हैं, उनके परे कोई नहीं ? अन्य भगवान् या अवतार को उनसे ही आवश्यकतानुसार प्रेरणा, प्रकाश एवं शक्ति मिलती है। उनका परत्व सदा रखना चाहिये।

शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना। जासु अंश उपजहिँ जग नाना॥
समरथ शरणागत हितकारी। गुण ग्राहक अवगुण अघहारी॥

जहाँ तक शरणागत जीव का सम्बन्ध है, उपरोक्त चौपाई से स्पष्ट है कि शरणागत जीव का अन्तिम कल्याण करने के लिये, सदा उसकी रक्षा, उसका पोषण करने के लिये 'समरथ' हैं। अपने आश्रितों के पोषण, पालन एवं रक्षा के लिये उन्हें किसी का सहारा नहीं चाहिये। शरणागति चाहने वाले को शरण में लेने के लिये गुरु रूप में वे ही प्रकट होते हैं। गुरुदेव के द्वारा ही उनकी ' समरथ–शरणागत हितकारिता' प्रकट होती है। शरणागति के बाद उनके द्वारा क्या किया जाता है, उसका संकेत इस चौपाई में है।

जीव की तीन ही पूँजी है, 'विधि प्रपंच गुण, अवगुण साना' के अनुसार 'गुण अवगुण' तो शरीर के साथ ही मिलते हैं, संसार में गुण वाली वृत्तियों से पुण्य कर्म होते हैं, अवगुण वाली वृत्तियों से 'अघ' (पाप) कर्म होते हैं। इस प्रकार जीव की पूँजी हुई 'गुण, अवगुण, एवं अघ'। गुण से ही नाना प्रकार की सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और अवगुण से सम्पत्ति का ह्रास, हरण होता है, यहाँ तक की ऋण की वृद्धि हो जाती है। शरणागत जीव के गुण (कमाई) को तो सरकारी खजाने में जमा कर लिया जाता है, अवगुण और उससे बने 'अघ समूह' को हरण कर लिया जाता है अर्थात् उनके प्रभाव का फल शरणागत जीव को नहीं भुगतना पड़ता। उसके ऋण आदि का शोध तक सरकारी खजाने से किया जाता है 'जन्मकोटि अघ नाशों तबहीं' से भी उपरोक्त अर्थ का समर्थन होता है। यदि जीव की कमाई, एक कोटि है तो उसे तो भगवान् के कोष में रख लिया गया, उस कमाई से उतना ही अंश दिया जायगा जितने से उसका जीवनयापन सुचारु रूप से हो पायेगा। यदि कमाई कुछ नहीं है, केवल ऋण मात्र है तो सरकारी कोष से उसका ऋण शोधकर भरण-पोषण भी सरकारी खजाने से ही होता है। अतएव गुरुदेव द्वारा नियन्त्रित जीवन ही शरणागत जीव का चलेगा। आय-व्यय दोनों का नियन्त्रण गुरुदेव को करना है। जब गुण ग्रहण कर लिया गया, अवगुण, अघ के प्रभाव को हरण कर दिया गया तो शरणागत जीव की अपनी पूँजी ही क्या रही। उसके मात्र धन हैं 'गुरुदेव' वा साक्षात् 'परम धन' श्री सीतारामजी युगल-जोड़ी। शरणागत जीव को स्वेच्छा कहाँ रह गयी ? प्रतिपल नियन्त्रण गुरुदेव का है।

अतएव चरित्रनायक ने स्पष्ट कहा कि 'आप मेरे धन को स्वेच्छानुसार व्यय नहीं कर सकते। मेरी राय से चलना ही कल्याणकर होगा गुरु अवज्ञा का परिणाम बुरा होता है। आपकी सारी सम्पत्ति हमारी है, आपकी कोई सम्पत्ति नहीं सिवाय युगल सरकार के।'

मन में चरित्रनायक का जयकार करते हुए चरित्रनायक के ही आदेशानुसार सारी व्यवस्था होने

लगी। लेखक ने धर्मपत्नी से कह रखा था कि जैसी आवश्यकता दीख पड़े उनकी राय से सामान बाजार से मँगा देना। निजी परिवार में भी सात जीव थे, इस प्रकार २१ इक्कीस व्यक्ति का भोजन बनता रहा। उस अवसर पर छोटे पैमाने पर एक विवाह एवं कलेवा उत्सव भी सम्पन्न हुआ जिसमें श्री रंगलाल चौधरी, श्री नीरसू चौधरी, स्थानीय सब जज, श्री केदारनाथ कई मुन्सिफ तथा इने-गिने प्रेमियों ने भाग लिया। सात आठ दिनों तक सत्संग, झाँकी, विवाह, कलेवा सुख देकर चरित्रनायक श्री अवध के लिये प्रस्थान कर गये।

श्री रंगलालजी आदि मित्रों ने पूछा 'क्या व्यय हुआ ?' लेखक ने अपनी पत्नी से पूछा। उनने बताया कि कोई भोजन का सामान बाजार से नहीं मँगाया गया। महीने की आखरी थी, अतएव परिवार के सात व्यक्तियों के लिये ९ दिन का खुराक बचा था। उसी सात व्यक्ति के खुराक को इक्कीस व्यक्तियों ने आठ दिन तक पाया। यह जानकर सभी को आश्चर्य हुआ। नित्य बालभोग में भुजा, चूड़ा चला। दिन में दाल भात एवं सब्जी, रात्रि में खिचड़ी, सब्जी तो हाते में ही 'कुम्हड़ा' फला था, वही नित्य प्रधान तरकारी हो गया। कभी-कभी दो-चार आने की अन्य सब्जी मँगायी गयी।

सतुआ, खीचड़ी ही चरित्रनायक का प्रधान भोजन क्यों

उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए चरित्रनायक ने बिहँसते हुए कहा 'आप लोगों की अपनी दुनियाँ में मेरे जैसे लोग हैं, उनका खान-पान भी मेरे जैसा है पर उनको आप नहीं छेड़ते। जो जिस परिस्थिति में रहता है, अपने को उसी परिस्थिति के अनुसार बना लेता है। मैंने जब चेला करना भक्तवर श्रीरामाजी के अनुरोध एवं हठ करने पर स्वीकार किया, उसी दिन से हमारी निजी दुनियाँ की समाप्ति हो गयी, निजी परिवार तो दो ही चार थे पर अब तो अपना परिवार पूर्व निजी परिवार से कई गुणा बढ़ने लगा। 'जैसा देश, वैसा वेप' जैसी मेरी दुनिया बनती गयी, वैसा मुझे बनना पड़ा। हमारे शिष्यों में कितने प्रतिशत लोग धनी, मानी, कार मोटर, रखने वाले, वा बड़े अधिकारी पद पर हैं ? इने-गिने ही धनीमानी वा विद्वान् लोगों ने मेरे जैसे व्यक्ति को गुरु बनाया है, अधिकांश शिष्य तो दीन हैं, मध्यम वर्ग के हैं। किसी प्रकार अपना समय बिता रहे हैं। मैं प्रधानतः इन दीन दुखियों का ही गुरु हूँ। इन्हें भौतिक क्षेत्र में फँसाये रखना वा उन्हें लखपति बनाकर जन्म-मरण के लोक में रखना हमारा लक्ष्य नहीं है। जब मैं उन्हें लखपति नहीं बना सकता तब मुझे लखपतिया-सी टीम-टाम रखने वा उसी प्रकार के ऐश्वर्य भोगने का क्या हक है ? महात्मा गाँधी ने भी तो हिन्दुस्तान की गरीबी देखकर ही अपने को प्रधानतः गरीबों का ही नेता वा सेवक माना था। देश की जनता की औसत आय के अनुसार उनने भी अपना वेष, भोजन बना रखा था। तत्कालीन ६ पैसे मूल्य का ही भोजन करते थे, तीन चार हाथ मोटे वस्त्र से अपना अंग ढाँप लेते थे। गाँधीजी के इस प्रकार के जीवन को आप लोग सराहते हैं पर मेरे वेष भोजन के मामले में क्यों हस्तक्षेप करते हैं। मुझे ऐसा बनकर रहना है कि अपने शिष्य परिवार का बोझ नहीं बन जाऊँ। वह मुझे एक शाम भोजन दे सेवा करने में वा एक हाथ वस्त्र देने में सानन्द समर्थ हो। मेरी सेवा के लिये उसे कर्जा न करना पड़े। सत्तू, खिचड़ी से सस्ता भोजन क्या होगा ? मोटा वस्त्र से सस्ता दूसरा वस्त्र भी नहीं होगा। यही विचार कर मैंने अपने भोजन एवं वेष को गरीब-नेवाजी ढंग का बनाया हूँ।'

उपरोक्त उच्च विचार सुनकर लेखक बड़ा ही प्रभावित हुआ और आगे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई।

"गई बहोर गरीब नेवाजू, सरल, सबल साहिब रघुराजू' के भाव चरितार्थ हुए।'

१९५३ ई० में धनबाद आने पर लेखक ने लगभग तीन साल का जीवन धनबाद में बिताया।

यहाँ भी हस्ताक्षर जाल बनाकर लेखक की नौकरी समाप्त करने की कुचेष्टा उच्चाधिकारियों द्वारा करायी गयी। अभियोग के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देकर लेखक चुप बैठा रहा। सूचना चरित्रनायक को भी दी गयी। उनने तो पैरवी करने तक का संकेत किया। मन में आया 'यदि सत्य का समर्थन भगवत् कृपा से नहीं होता तो क्या मेरी पैरवी से सत्य प्रकट होगा ? नौकरी जाय-तो-जाय पर पैरवी नहीं करूँगा। ऐसा निर्णय हृदय में हुआ।' कृपा का अनुभव तो हो ही रहा था।

चरित्रनायक के भाव विचार से ऐसा लगा कि लेखक की नौकरी की आयु १९५५ तक ही थी। दूसरा व्यवसाय कर जीवनयापन करना ही प्रारब्ध में था। पर कई वर्षों से नौकरी करने के बाद स्वभाव संस्कार नौकरी के लिये अधिक उपयुक्त हो गया था। इसका विचार चरित्रनायक बराबर कर रहे थे। 'शरणागत होने के नाते लेखक के आश्रित परिवार की व्यवस्था तो भगवान् को करनी ही थी। अतएव प्रारब्ध के अनुसार गई हुई नौकरी को अपनी ओर से लौटाने का निर्णय श्री सिय स्वामिनी की कृपा से हुआ। उन्होंने अगस्त, १९५५ के एक पत्र में लिखा 'आपका (लेखक का) पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्न चित्त हुआ। 'एक सपना मुझको आपके बारे में हुआ है। निकल जाने के साथ-साथ २-१ खोटाई नजर आयी। खैर "गई बहोरि गरीब नेवाजू, सरल सबल साहिब रघुराजू। इस चौपाई में निहित विरदावली को धारण कर ही भगवान् ने गई हुई नौकरी को अपनी ओर से लौटाने का निर्णय दिया। यही संकेत एवं भाव चरित्र-नायक के पत्र से प्रगट हुआ।'

प्रारब्धवश 'मूक' एवं प्रारब्धवश 'पंगु, को 'गई बहोर' वाली विरदावली धारण कर ही वे वाचाल बना देते हैं एवं लँगड़ा को पहाड़ चढ़ा देते हैं।

१९५६ फरवरी मास में चरित्रनायक पटने ११ दिन रह गए। उस अवसर पर लेखक भी बराबर साथ रहकर झाँकी, विवाह आदि का सुख लेता रहा। विभागीय कार्यालय जाकर अन्तिम आदेश की भी प्रतीक्षा प्रतिदिन करता रहा। लेखक का १० दिन तो बुखार में ही बीता। मित्रों की राय हुई 'उपवास रहकर दवा खाओ' पर चरित्रनायक प्रतिदिन अपने हाथों सब जानते हुए भी प्रसाद देते गए और पंगत में अपने बगल में बैठाकर पवाते गए। ग्यारहवाँ दिन जब वे गंगा पार जहाज से जाने लगे, लेखक को उनने आदेश दिया कि आज विभागीय आदेश शाम तक मिल जायेगा। उसे लेकर ही धनबाद लौटना। हुआ भी वैसा ही ग्यारहवें दिन आठ बजे रात्रि को विभाग के प्रधान अधिकारी ने स्वयं आदेश तैयार कराकर दे दिया। इस प्रकार 'गई बहोर' चरितार्थ हुआ। बुखार भी आज के दिन बिदा हो गया। चंगा होकर लेखक धनबाद वापस आ गया।

चरित्रनायक के आश्रित दो भक्त रत्नों की जीवनलीला

जैसे पक्षी अपने पंख द्वारा स्पर्श अण्डे के भीतर के बच्चे को धीरे-धीरे बढ़ाता है, उसी प्रकार गुरुदेव स्पर्श द्वारा शिष्य की भीतरी शक्ति को जाग्रत करते हैं। जैसे मछली केवल दृष्टि द्वारा ही निज बच्चों को पोषण करती है, उसी प्रकार गुरुदेव अपनी दृष्टि द्वारा ही शिष्य में शक्ति संचार करते हैं। कछुआ चिन्तन द्वारा ही भूमि भीतर स्थित अण्डों में से बच्चों को निकाल लेता है, वैसे ही मनन द्वारा ही गुरुदेव शिष्य की आन्तरिक शक्ति का जागरण कर देते हैं। समर्थ गुरु स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा एवं मानसिक दीक्षा देने में सक्षम होते हैं। शास्त्रों में गुरुदेव के उपरोक्त लक्षण वर्णित हैं। हमारे चरित्रनायक के सम्पर्क में जिन लोगों का समय कटा है वा जिन लोगों पर कृपा हो चुकी है उनका यही मत है कि हमारे चरित्रनायक शक्ति संचारी गुरुओं में एक हैं उनने अंतस्थ शक्ति जागरण करने के विचार से जिसको देखा, जिसको स्पर्श कर दिया वा जिसको निज चित में स्थान दिया वह तो निहाल हो गया।

चरित्रनायक कहा करते थे कि एक ही जले दीपक से अनन्त दीपक जलाये जा सकते हैं पर अनन्त बुझे हुए दीपक से एक दीपक भी नहीं जलाया जा सकता। जिसकी अन्तर्ज्योति स्वयं जली हुई नहीं है वह दूसरे को अन्तर्ज्योति को कैसे जला सकता है। ग्रंथों में सभी मन्त्र लिखे हुए हैं, ग्रन्थ से बाहर का मन्त्र थोड़े ही कोई गुरु देता है। उन मन्त्रों को कोई अपने ही याद कर लें या जप करे तो क्या लाभ हो सकता है। जिनने मन्त्र जागरण स्वयं कर लिया है, वही औरों को मन्त्र देकर मन्त्र जागरण कराने में समर्थ हो सकता है।

हमारे चरित्रनायक शक्ति संचारी गुरु थे। इसके प्रमाण में उनके आश्रित दो भक्त रत्नों की चर्चा की जा रही है जिनकी प्रभा प्रकट हो गयी थी। इन लोगों ने एक ही जीवन में निज प्रीतम धाम को प्राप्त कर लिया। यों छिपे-लुके उनके कितने शिष्य किस स्थिति का लाभ कर चुके हैं यह जानना या बताना कठिन है। चरित्रनायक ने अपने एक पत्र में कहा था "हमने अभी तक चार ही चेला किया, दो चले गये और दो हैं" चेला तो उनके पचास हजार से भी अधिक हैं पर चार चेला कहने का क्या भाव है, वे ही जानें। दो चले गये उनकी अनुभूति एवं प्राप्ति की चर्चा श्रीमुख से चरित्रनायक ही ने एकान्त अवसरों पर कभी की थी।

प्रथम शिष्या हैं श्रीमती चंद्रकला सहचरी, ग्राम बरुराज, जिला मुजफ्फरपुर। मुजफ्फरपुर जिले में बरुराज ग्राम में प्रतिष्ठित भूमिहार परिवार का निवास है। राजनीति में भी वहाँ के लोगों की ख्याति उच्च दर्जे की है, वहाँ की महिलाओं की भक्ति साधना अनुकरणीय है, अभी भी दो तीन महिलायें श्री अवध वास कर रही हैं। चन्द्रकला बहन युवा अवस्था में ही विधवा हो गयी थीं। वे सम्पन्न परिवार की थीं। उनके योग्य पुत्र एवं पुत्र-वधू उनकी यथोचित सेवा करते थे। जब भी ये परिवार में निवास करने जाती थीं, इन्हें नाना प्रकार के रोग हो जाया करते थे। लाचार रोग त्राण पाने के लिये वे श्री अवध दौड़ती थीं। उनका परिवार चाहता था कि वे परिवार में रहकर भक्ति साधना करें, पर यह बात उनके इष्टदेव को पसन्द नहीं थी। इष्टदेव का भाव था "परिवार तो तुम्हारा, मेरा है। उन्हें तुम क्या सुखी कर पाओगी अथवा वे तुम्हें क्या सुखी कर पावेंगे। अब तू हमारी है। हमारे तुम्हारे बीच और कोई दीवार नहीं रह सकती। "एक भरोसा, एक बल, एक आस विश्वास" लिये तू सदा मेरा चिन्तन ध्यान कर, इस प्रकार मेरा सान्निध्य प्राप्त करो।" यही शिक्षा चरित्रनायक भी उन्हें दिया करते थे परिस्थिति भी ऐसी बन गयी कि १९६४ ई० में शरीर त्याग के पूर्व चन्द्रकला बहन का शरीर उनके काम के लायक भी नहीं रह गया था तो परिवार में इन्हें कौन पूछता ? कुछ वर्षों से वे श्री अवध वास कर रही थीं।

श्री अवध वास के पूर्व में ही उनके हृदय में ऐसा भाव उठा कि "जब सचमुच में सिया स्वामिनी की सहचरी हूँ। उनके प्रीतम ही हमारे प्रीतम हैं तो वे इसका कुछ प्रमाण क्यों नहीं देते ?" यही विह्वल अवस्था में वे बार-बार किशोरीजी से प्रार्थना करती थीं नाम जपती रहती थी और एकान्त कोठरी में निवास किया करती थीं। "जापर जाकर सत्य सनेहू, सो तिहि मिलहिँ न कछु सन्देहू।" चरितार्थ हुआ।

प्रेम सम्बन्ध के प्रमाण रूप उनके वस्त्रों पर कभी-कभी गुलाबी रङ्ग के छींटे पड़ने लगे। इस प्रकार कुछ काल बीतने पर उन्हें रात्रि बेला में तरह-तरह की दिव्य झाँकी मिलने लगी। सपने में हँसी-मजाक की बातें भी होती। एक रात्रि वे बेसुध सो गयी। थकावट के कारण प्रीतम का कोई ध्यान भी न था। चार बजे भोर उठने की आदत थी। उन्होंने लालटेन जलाया तो पाया कि बिछावन पर सिन्दूर छिटा हुआ है। माँगों में भी सिन्दूर भरा है। उसी अँधियाली में वे जल लायीं, कपड़ा बदलकर उनने साबुन

लगा दिया। बिछावन के चादर को भी जल्दी-जल्दी साफ किया। चिन्ता हुई, दुनियाँ जान जाय तो क्या अवस्था हो जायगी। लोग क्या कहेंगे? आदि लोक मर्यादा, लोक भय की भावना जाग्रत हो गयी। चरित्रनायक भी उस दिन श्री अवध में ही थे। उनने एकान्त में जाकर उन्हीं से रो-रोकर सारी बातें बतायी। गुरुदेव ने कहा तू रोती क्यों है? तूने हठ किया, तुम्हारा सच्चा प्रेम पाकर प्यारे ने अपने सम्बन्ध भाव की पुष्टि स्थूल शरीर रहते ही कर दी। दुनियाँ की परवाह छोड़ो। परिवार त्याग देगा तो मैं तुम्हारी रक्षा सेवा करता कराता रहूँगा। वैसे ही हुआ भी। १९६४ में हमारे चरित्रनायक ने उन्हें निज प्रीतम के धाम साकेत पहुँचा ही दिया।

एक बार लेखक ने ऐसा प्रश्न किया था कि क्या स्थूल शरीर रहते ही प्रीति सम्बन्ध का उनकी ओर से कोई प्रमाण मिलता है? उसी के उत्तर में चरित्रनायक ने चन्द्रकला बहन की बातें बतायी थी। आगे चलकर जब बहनजी से कुछ सम्पर्क हुआ तो उनने भी छिपे ढंग से उक्त सत्य का समर्थन किया था।

दूसरे भक्त शिरोमणि हैं श्री विन्देश्वर शर्मा—वैदेहीशरण जी महाराज ग्राम—शाहपुर, जहानाबाद जिला—गया।

श्री शर्माजी बालपन के ही राम नाम के प्रेमी थे। श्री रामचरितमानस तथा गोस्वामी तुलसीदास जी के अन्य ग्रन्थों का सदा अवलोकन किया करते थे। कीर्तन के तो वे साकारविग्रह ही थे। कुछ वर्षों तक उन्होंने विवाहित जीवन व्यतीत किया। उदर पूर्ति के लिये वे आई० ए० तक पढ़ने के बाद मिडिल स्कूल में शिक्षक का कार्य करते थे। नियुक्ति समय उनसे पूछा गया कि कितना वेतन लेंगे? उन्होंने उत्तर दिया कि अधिक वेतन नहीं चाहिये, केवल भोजन एवं अंग ढाँपने मात्र के लिये जो भी मिल जायगा वही पर्याप्त होगा। कहा जाता है कि पद के लिये निश्चित वेतन राशि बराबर उनने कम ही वेतन लिया, वेतन की शेष राशि विद्यालय कोष में ही रही और विद्यालय के कल्याण में लगी। सदा एकान्त वास ही उन्हें पसन्द था। अनावश्यक चर्चा से वे दूर रहा करते थे। उनका भोलापन एवं सीधापन तो देखते ही बनता था, मानो उन पर युग का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ने पाया था। प्रथमतः तो उन्होंने गृहस्थ भक्त के रूप में श्री अनन्त मुनि महाराज से गुरु मन्त्र ग्रहण किया। धर्म-पत्नी के निधन के बाद इन्होंने लँगोटी अँचला तथा सम्बन्ध मन्त्र भाव हमारे चरित्रनायक से ले लिया। इस प्रकार विरक्त वैष्णव बनकर ही उनके जीवन काल का अधिकांश भाग बीता। श्री अवध धाम में तो हर उत्सव समय में वे श्री विवहुती भवन में ही रहा करते थे। समय पाकर वे श्री चित्रकूट एवं वृन्दावन धाम भी जाया करते थे।

उन्होंने शाहपुर के पास सड़क किनारे ही एक मन्दिर का निर्माण कर भजन भाव वहीं किया। चरित्रनायक को आमन्त्रित कर श्री विवाह एवं कलेवा उत्सव भी उस मन्दिर प्रांगण में आयोजित किया करते थे। लेखक को भी उन उत्सवों में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। श्री शर्माजी बड़े ही गुप्त नाम साधकों में थे। छिपकर ही उनका साधना जीवन बीत रहा था।

श्री विवाह-कलेवा एवं युगल झाँकी के अवसर पर उनकी प्रधान सेवा थी पद गान द्वारा प्रिया प्रीतम को रिझाना। उनके पद भी चुने हुए थे, उन्ही पदों को, लगता है, उन्होंने सिद्ध कर लिया था। पद गान की विशेषता यह थी कि झाल उनके हाथों में रहता पर मन और दृष्टि एकमात्र सामने युगल सरकार के पादपद्मों में रत रहता। वे पदगान समय अन्य गायकों की नाई, दायें बायें वा पीछे देखते ही नहीं थे। सुनाना उन्हें था और सुनना था प्रिया-प्रीतम को तब औरों की ओर वे क्यों देखते? उनके पद सुनने से सुनने वालों में भी प्रीत भाव का उदय हो जाता था। रस धारा बहने लगती थी, धन्य थे श्री शर्माजी महाराज।

उनकी आन्तरिक गहराई वा ऊँचाई का परिचय किसी को क्या मिलता ? एक ऐसी घटना सबों के सामने १९५७ में श्री रामजन्म बधैया के अवसर पर नवलवर भवन श्री अवध में घटित हुई कि उसी के माध्यम से उनके आन्तरिक महत्व का परिचय लेखक समेत अन्य प्रेमियों को भी मिला।

श्री विवहुती भवन तो मिथिला है, वहाँ विवाह मण्डप है पर उस नवलवर भवन जहाँ मन्दिर बिहारी हैं वहीं श्री अवध का भाव किया जाता है। मन्दिर द्वार के सामने मार्ग छोड़कर श्री लीलास्वरूप युगल सरकार को सुसज्जित ऊँचे आसन पर एक ओर बैठाया गया था। दर्शकों को इस प्रकार मन्दिर बिहारी की झाँकी के साथ-साथ लीलास्वरूप सरकार युगल जोड़ी की भी झाँकी मिल रही थी।

दर्शकों से मन्दिर के सामने एवं अगल-बगल का स्थल भी भरा हुआ था। उस वर्ष मथुरा वृन्दावन से भी दर्शकों का दल आनन्द ले रहा था। बधैया के पद चरित्रनायक के बाद अन्य प्रेमियों ने भी गाये। श्री शर्माजी हमारे चरित्रनायक के दायें बैठे थे और जीवन चरित्र लेखक चरित्रनायक की बायीं ओर बैठा। चरित्रनायक ने श्री शर्माजी को झाल देकर पदगान करने को कहा। उन्होंने श्रीसियाजू की वन्दना के पद से ही गान आरम्भ किया, पद की प्रथम पंक्ति थी "होहि तो भरोसो सियाजू रावरी चरण को।" उनकी दृष्टि श्री स्वामिनी जू के महावर रंजित नखावली पर थी, शब्द ओज एवं रस से भरे थे। रूँधे हुए गले से कम्पित स्वर में वे गा रहे थे। सिया स्वामिनी जू भी एकटक उन्हीं की ओर निहार रही थीं। पाँच ही सात मिनट पद गाते हुआ, पद पूरा भी न हो सका। अचानक उनके हाथों से झाल फेंका गया और श्री शर्माजी ६-७ फीट ऊँचा पड़ी हुई अवस्था में चले गए, मानों नवलवर भवन के भीतरी छत में जो चारों ओर से रेलिंग बनी हुई है उस ऊँचाई तक पड़ी हुई अवस्था में वे गए। किसी ने धीरे से लाकर बैठे हुए दर्शकों की गोद में उन्हें रख दिया, अन्यथा यदि उनका शरीर बिना सहारा के उस ऊँचाई से गिरता तो दर्शकों में कितने को पूरी चोट आती। उनका सिर युगल सरकार मन्दिर बिहारी की ओर, और चरण लेखक की गोद में रख दिया गया। लगभग दस मिनट तक सभी स्तब्ध हो देखते रहे। शर्माजी की आँखें बन्द थीं।

लेखक ने चरित्रनायक से धीरे कहा—"यह क्या हो गया ?" चरित्रनायक ने कहा—"हुआ क्या है ?" इतना कहते ही उन्होंने अपना हाथ श्री शर्माजी के माथे पर स्पर्श कराते हुए कहा—"उठ शर्माजी, इधर आकर बैठ जा।"

मानो शर्माजी निद्रा से जग गए और चरित्रनायक के बगल में जहाँ पहले से बैठे थे आकर बैठ गए। एक पीत साफी मँगाकर चरित्रनायक ने श्री शर्माजी को ओढ़ा लिया और उन्होंने चरित्रनायक के चरणों में गिरकर आशीर्वाद पाया।

जो विद्युत ज्योति पुञ्ज श्री किशोरीजी के नख से छिटकने लगी, उसे केवल शर्माजी ने ही देखा। स्थूल नेत्र उस ज्योति के चकाचौंध से बन्द हो गए। श्री शर्माजी ने एकान्त में बताया कि ज्योति के चकाचौंध में आँखें बन्द हो गयीं और वे अकथनीय आनन्द समुद्र में निमग्न हो गये थे। भाव समाधि-सी लग गयी थी। चरित्रनामक ने बताया कि युगल प्रिया-प्रीतम के नख से जो ज्योति निकलती है वह सारे प्रेम लोक को छिपा लेती है, यही ज्योति दर्शन, ब्रह्म दर्शन है। इसी ज्योतिजनित आनन्द को ब्रह्मानंद कहा जाता है। ब्रह्म ज्योति में छिपे हुए चरणों के ऊपर के रूप सुधा का पान तो वही कर सकता है जिसे श्री सिया स्वामिनी जू उस रूप सुधा को पान करने की दृष्टि दें। लेखक ने सुनी हुई बातों को जहाँ तक समझ में आया, उसी के अनुरूप विवरण प्रस्तुत कर दिया। यदि कहने में कुछ भूल हो तो जानकार सन्त प्रेमी क्षमा करेंगे।

उपरोक्त विवरण देने का इतना ही उद्देश्य था कि चरित्रनायक के शिष्यों में श्री शर्माजी भी

इतनी उच्चकोटि तक पहुँच गये कि चरित्रनायक के शब्दों में उन्होंने शायद १९६३–६४ में शरीर त्यागकर प्रीतम के लोक "मणि मण्डप में स्थान पाया " वहाँ भी नित्य विवाह पद गाकर आनन्द वर्षा से भीगते भीगाते रहते हैं।

जय गुरुदेव, जय शर्माजी

चरित्रनायक में समदर्शिता भाव का एक नमूना

१९६०ई० की बात है। हमारे चरित्रनायक श्री रगंलाल चौधरी के साथ गया अपने एक शिष्य के घर पधारे। शिष्य की बड़ी लड़की कुछ मास से पागल जैसा व्यवहार कर रही थी चिल्लाना, हल्ला करना, कभी रोना, कभी हँसना, जहाँ-तहाँ पाखाना पेशाब कर देना, कभी, वस्त्र रखना, खोलकर नंगा हो जाना आदि। दवा, दारू, झाड़ फूँक, यन्त्र-तन्त्र कुछ भी काम नहीं कर रहा था। लड़की के माता की दशा तो और दयनीय थी। मैट्रिक में पढ़ने वाली बड़ी लड़की का उस वर्ष विवाह प्रायः तय-सा हो गया था, तब यह उपद्रव खड़ा हुआ। पहले यह लड़की चरित्रनायक की बराबर श्रद्धापूर्वक सेवा करती थी और आज वही उनके आने पर शोर गुल बन्द कर एक कोठरी में जा बैठी थी। चरित्रनायक स्वयं महाप्रसाद बना रहे थे। उसी के पास वाली कोठरी में वह लड़की बैठी थी। इन्हें देखकर भी दण्डवत करने नहीं आयी तब वे बोल उठे। "क्यों प्यारी, तू मुझको भूल गयी। तू जिसके फेर में है वह दण्डवत क्या करेगा? दण्वत करें तो भस्म ही हो जायेगा। तू अपनी समझ मत खो" तो भी उस लड़की ने आकर दण्डवत नहीं किया।

पहले से भी भ्रम था कि लड़की को किसी बाहरी शक्ति का आवेश है। अब तो इस विश्वास पर मुहर लग गयी कि देवबाधा या प्रेतबाधा ही है जिसको भस्म तक करने की शक्ति थी उन्हें यही चरित्रनायक बोल उठे "जैसी मेरे लिये यह लड़की वैसे ही यह अदृश्य शक्ति। मैं क्यों इसे कष्ट पहुँचाऊँ मेरे लिये तो सब समान ही है। सन्त को तो सभी प्रिय हैं।"

इतना होते हुए भी उनने कृपा की। उस लड़की को माता सहित श्री अवध में डेढ़ साल रखा, भक्तवर श्री रामाजी के आश्रम में एक मास रखा और पागल खाने में भी तीन चार साल रखा। अब वह वस्त्र धारण किये रहती है, स्नान भोजन किसी प्रकार करके पड़ी रहती है, चिल्लाना, रोना बन्द है। ऐसा कोई व्यवहार नहीं करती जिससे यह मालूम पड़े कि उसे किसी से परिचय वा प्रेम है। उनका अन्तिम आशीर्वाद यही है "यह ठीक होते ही थोड़ा काल रहकर शरीर त्याग कर देगी। यही क्या कम कृपा है? पर वैष्णव के घर प्रेत या देवबाधा? नाम, धाम, सरयू-स्नान, रामार्चा मनिता कोई भी बाधा न हटा पाये, यह तो महान आश्चर्य की बात अवश्य है! इसका उत्तर है कि सभी कानून एवं सिद्धान्त के अपवाद होते हैं। प्रभु इच्छा सर्वोपरि है। इसी प्रकार आवेश के आधीन रहकर इस जीव का जीवन व्यतीत होना है तो भगवान के निर्णय मिटाने वाला कोई यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र वा साधना नहीं है। उनकी समदर्शिता का यह एक अनुपम नमूना है। धन्य है गुरुदेव। "वसुदेव कुटुम्बकम्" वाली उदार सन्त वृत्ति चरितार्थ हुई।

सप्तम खण्ड

उपासना रहस्यमय, मिथिला भाव एवं सीता तत्व पर चरित्रनायक के विचार

श्री सिया स्वामिना जू की वन्दना

सिया हो मिथिला प्राण के प्राण, लली हो प्रेमिन जीवन जान ।
अवढ़र ढरण अशरण को, तुझ समान नहिँ आन ॥१॥
जनक बाबा की नयन पुतरिया, सुनयना अरमान ।
प्रकट विदेह परम सुकृति फल, मूरति मधुर महान ॥२॥
हो अलियन के जीवन सर्वस, निज जन ज्ञान गुमान ।
अवध नन्दन की प्राण प्यारी, तू ही पूजा तूही ध्यान ॥३॥
मिथिला कुंज, गलिन में वन गए, भौंरा राम सुजान ।
तव पद पद्म पराग सरस रस, करत निरन्तर पान ॥४॥
तव मुख मण्डल चन्द्र पूरण लखि, रस-सिन्धु उमड़ान ।
विश्व विमोहन की मन मोहनी, रसिया को रस-दान ॥५॥
सदा निछावर करत श्याम पिय, तुझ पै तन, मन प्राण ।
नवल-किशोर जीवन बगिया में, हो तू वसन्त वितान ॥६॥
छवि की छवि, शोभा श्रृङ्गार की, प्रेम कला विज्ञान ।
यहि जग-जीवन हैं के जीवन, करुणा, रूप रस खान ॥७॥
तव पद नख ज्योतिन की ज्योति, नयनन-नयन महान ।
निज प्रीतम छवि धाम लखन को, दो निज दृष्टि दान ॥८॥
गुरु प्रसाद एक तुही सहारा, नहिँ साधन, गुण, ग्यान ।
लखत रहौं नित दिव्य युगल छवि, यह वरदान न आन ॥९॥

१९५०-६० ई० की अवधि में हमारे चरित्रनायक कतिपय अवसरों पर उपासना रहस्य, मिथिला भाव एवं सीता तत्व के सम्बन्ध में अपना विचार प्रेमियों के बीच प्रकट करते रहे। चरित्र लेखक को भी इस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर वे प्रकाश दिया करते थे। यथामति उनके तत्सम्बन्धी विचारों को संग्रह कर सुरक्षित रखा गया था। उसी आधार पर पाठकों के समक्ष सम्बन्धित तथ्यों को प्रस्तुत करने की धृष्टता लेखक कर रहा है। चरित्रनायक जैसी गहन-से-गहन विषय को सरल रूप में प्रकाशित करने की शैली कहाँ? तो भी उनकी उपासना प्रणाली के रहस्यों को उनके आश्रितों के समक्ष रख देना कल्याण-कारी ही होगा-विशेष कर ऐसे लोगों के लिये जिन्हें चरित्रनायक का आन्तरिक सत्संग जीवन में प्राप्त नहीं हो सका था।

उपासना रहस्य—प्रथम प्रश्न है कि उपासना किसकी की जाय और उपासना शब्द के भाव क्या हैं ?

निर्गुण निराकार ब्रह्म की न तो कोई जीवनलीला है और न उसकी कोई पूजा ही सम्भव है। वह तो सदा अदृश्य, अरूप, अनाम, सर्व उपाधि विहीन है, तब उसकी उपासना ही क्या ? उसकी षोडशोपचार पूजा कैसे हो सकती है ? ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि कई धर्म ग्रन्थों में निर्गुण ब्रह्म को अनन्ततापूर्ण दिव्य "ज्योति पुञ्ज" बताया है, यही किरण रूप में सर्वव्यापक होकर संसार को कायम रखे हुये है। निर्गुण वादियों का लक्ष्य है उसी अनन्त ब्रह्म ज्योति का अपने में दर्शन कर, उसी आनन्द में निमग्न रहना और अन्त में उसी में विलीन हो जाना अर्थात् वही हो जाना "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।" कुछ निर्गुण वादियों में तो ऐसे भावों का उदय होने लगा है जिसमें अपने से भिन्न भगवान की कल्पना तक मिटी जा रही है। ऐसा भी कहने वाले लोग हैं जो कहते हैं "सोऽहम्" "शिवोऽहम्" आदि। मैं भगवान हूँ" इसी सत्य को योगादि साधनाओं के द्वारा अनुभव सिद्ध करना उनका लक्ष्य हो गया है।

उपरोक्त भाव से सर्वथा भिन्न एक दूसरी विचारधारा है "मैं भगवान नहीं हूँ, पर मैं भगवान का हूँ "मन क्रम वचन से मैं भगवान का ही बन जाऊँ, इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये इस विचारधारा के लोग साधना में लगे हैं। "जीव कि ईश समान ? "जीव अनेक एक श्री कन्ता" इस सत्य को स्वीकार कर इस मार्ग वाले चलते हैं। संसार में जीव किसे कहते हैं और ईश किसे कहते हैं इसको तो अवतार-धारी ब्रह्म स्वयं भगवान राम ने स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं—

माया ईश न आप कहँ, जान कहिअ सो जीव।
बन्धु, मोक्ष-प्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव॥

इस प्रकार निर्गुणवादियों को मन्दिर मठ से कोई प्रयोजन नहीं। तीर्थाटन की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं। भगवान की छवि, छटा, रूप, सौंदर्य से उन्हें क्या लेना-देना है ? स्थायी एवं नित नूतन "रूप" भी भगवान का हो सकता है, इस ओर तो उनकी गति ही नहीं। जब अपने में ही सब कुछ है तब भगवान के अलग लोग हैं, नित्य धाम हैं, वहाँ रूप धारण कर वे रहते हैं आदि बातों को समझने का प्रयास करना तो वस्तुतः निर्गुणवादियों के लिये अनावश्यक हो जाता है। एक निर्गुणवादी एवं एक सगुण साकारवादी महात्मा में जो महात्मा कबीर समकालीन थे, परस्पर वाद-विवाद हो गया। दोनों अपने-अपने पक्ष की पुष्टि में दृढ़ थे। किसी प्रकार उन लोगों के मन में यह आया कि महात्मा कबीर की जानकारी हम लोगों से ज्यादा है। वे निर्गुण सगुण दोनों के रहस्य के ज्ञाता हैं। उन्हीं के पास चलकर निर्णय कराया जाय। दोनों की बातों को श्रवण कर महात्मा कबीर ने अपना निर्णय इन शब्दों में दिया—

निर्गुण है सो पिता हमारा, सरगुण है महतारी।
काको निन्दौं, काको बन्दौं, दोनों पल्ला भारी॥

निर्गुण को उनने पिता बताया। पिता के पास बीज है। "बीज" के पेट में क्या है, इसकी जानकारी कैसे हो ? बिना भूमि के बीज धारण कर उसमें छिपे तत्व को कौन प्रकट कर सकेगा ? सृष्टि में माता ही भूमि-रूप हो पुरुष के बीज को धारण करने में समर्थ है। राजा, रङ्क, फकीर सभी माता के गर्भ से ही प्रकट होते हैं। माता ही धारण करती है और निहित अवधि में धारित बीज के स्वरूप को प्रकट भी करती है अतएव निर्गुण तत्व सगुण तत्व का आधार लेकर ही अपने को प्रकट कर सकता है। उसके प्रकट होने का नाम ही अवतार, आविर्भाव आदि। श्री रामचरित्रमामस में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है।

अगुण-सगुण दोउ ब्रह्मस्वरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम युग ब्रह्म विवेकू॥

एक आग लकड़ी में छिपी है वह तो निर्गुण है परन्तु जिस लकड़ी से आग प्रकट हो गयी, तो उसी प्रकट आग को सगुण साकार कहा जाता है, ठीक इसी प्रकार ब्रह्म के प्रकट एवं अप्रगट अवस्था को सगुण एवं निर्गुण स्वरूप एक ही ब्रह्म कहा जाता है।

सगुण साकार रूप में ही अवतार होता है। अवतारी ब्रह्म की ही जीवन लीला होती है। अवतारी ब्रह्म ही अपने लीला चरणों तथा उपदेशों के द्वारा सारे संसार का पथ प्रदर्शन करते हैं। मानव का कर्तव्य क्या है? आदर्श माता-पिता भाई, पुत्री, पुत्र, पुत्र-बन्धु आदि परिवार, विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र समाज के अङ्गों एवं सन्त, महात्मा, फकीर आदि तक के कर्तव्यों की क्या मर्यादा हैं, समाज में सबों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा हो, आध्यात्मिक उत्थान के लिये कितने मार्ग हो सकते हैं, साधनायें क्या-क्या हैं आदि सारी बातों का दिग्दर्शन अवतारी ब्रह्म की लीला चरणों से ही होता है। इन्हीं प्रकट लीला चरणों को, वेद, सहित, उपनिषद्, पुराण, भक्तिग्रंथ आदि के रूप में पूर्वाचार्यों ने लेख बद्ध किया था। तो भी वेदों ने "नेति नेति" कहा। ऐसा इसलिये कहा कि अवतारी लीला तो प्रधानतः जब अवतारी पुरुष निजी महल से बाहर आये तभी हुआ। लीला भी अवतार की आवश्यकताओं के अनुसार ही हुई। आवश्यकतानुसार की लीला में अनेकानेक दिव्यगुणों में कुछ ही प्रकट हो पाये जो लीला जगत् के लिये पर्याप्त समझे गये। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि ब्रह्म ने अपनी समग्रता को ही नैमित्तिक लीला में प्रकट कर दिया। इसके अलावे अवतारी ब्रह्म ने निज महल में कैसी लीला की यह तो बाहर देखने को नहीं मिला। महल की बातें तो किसी के जीवन इतिहास के बाहरी कारनामों में नहीं सम्मिलित की जा सकती और न इतिहासकारों को भीभर की बातें लिखने का अधिकार ही है,। महली लीलाओं की चर्चा का संकेत इसीलिये रहस्य ग्रन्थों में है जिसके अध्ययन का सभी को अधिकार नहीं है। सार्वजनिक हित की बातें वेद शास्त्रों में ही उल्लिखित हुई। उन सारी लीलाओं को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसीलिये "नेति" शब्द का प्रयोग वेद ने किया।

अब यह जानना आवश्यक है कि उपासना शब्द के आन्तरिक भाव क्या हैं? उपासना शब्द के दो खण्ड हैं, उप एवं आसना। भौतिक क्षेत्र में यह देखा जाता है कि कोई सभापति होता है तो कोई उप सभापति बनता है। कोई अध्यक्ष है तो कोई उपाध्यक्ष है, सभापति के ठीक बाद ही उप सभापति का स्थान होता है, अध्यक्ष के निकट ही उपाध्यक्ष की गद्दी होती है। भाव यह है कि उप सभापति से निकटता है, सान्निध्य है। उन्हें सभापति के निकट ही स्थान, आसन मिलता है। ठीक इसी प्रकार विश्व के सभापति रूप जिस अवतारी ब्रह्म से प्रेम हो, उसी की निकटता, उसी का सान्निध्य प्राप्त करने की जो साधना व प्रक्रिया है उसी का नाम उपासना है। प्रीतम प्रभु की निकटता प्राप्त करना ही उपासना का लक्ष्य है।

उपासना मार्ग में पैर बढ़ाने के लिये हृदय में जब उत्कट चाह पैदा हो जाय, तभी इस मार्ग में प्रवेश सम्भव है। उसकी भूख तभी लगती है जब जीव सांसारिक जीवन से ऊबता है और संसार से ज्यादा सुख जहाँ मिले ऐसे लोक की खोज करने लगता है। राजा, रङ्क, फकीर सभी यहाँ के क्षणिक सुख से निराश होकर ही स्थायी आनन्द की चाह करते हैं पर इस राह पर तो फकीर ही चल पाता है जिसे नित्यानन्द की तुलना में दुनियाँ का सारा ऐश्वर्य फीका मालूम पड़ता है। यहाँ का चित्र क्या है? सुन्दर-से सुन्दर पुष्प खिलते हैं, मन को आकर्षित करते हैं पर दूसरे क्षण में जब वे मुर्झाने लगते हैं तब उनकी

ओर देखने का मन नहीं होता है। सुन्दरता भरी युवतियाँ किशोरावस्था में रूप जादू से दुनियाँ को कुछ काल तक परेशान करती हैं पर जब अवस्था ढलने लगती है तब उनकी ओर भी कोई नहीं देखता। नवीन की तलाश होती रहती है और हर बार कुछ काल बाद निराशा ही हाथ लगती है। जिन्हें हर प्रकार की सम्पत्ति, मान, प्रतिष्ठा आदि की चरम सीमा तक उपलब्ध है, उन्हें भी सच पूछा जाय, तो आन्तरिक सुख नहीं, धन के साथ सदा भय और कलह वर्तमान रहता है। इस प्रकार संसार की किसी वस्तु में स्थायी सुख नहीं दीखता।

सबसे प्रधान बात तो यह है कि यहाँ का जीवन जन्म-मरण प्रधान है। अधिकांश लोग तो इसी लोक को स्वर्ग-नर्क मान बैठे हैं। तब इससे सुन्दर लोक भी हो सकता है यह विश्वास उनके हृदय में कैसे उत्पन्न होगा ? इसीलिये अमर लोक वा मुक्त लोकों की सत्यता में विश्वास करने वालों की संख्या नगण्य होती जा रही है। यदि लोकवासी निज संसार का ही विचारपूर्वक अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट दीख पड़ेगी कि अन्धकार का विपरीत प्रकाश, दुःख का विपरीत सुख, हानि का उल्टा लाभ, अज्ञान का विपरीत ज्ञान इस द्विविध लोक में बिल्कुल सत्य है। जब हर स्थिति का विपरीत सत्य है। तब अनुमान के द्वारा उपरोक्त उदाहरणों को देखकर यह सिद्ध हो जाता है कि जन्म मरण प्रधान लोक का विपरीत अमर लोक, क्षणभंगुर आनन्द के विपरीत स्थायी आनन्द का लोक भी अवश्य सत्य होगा। तभी इस आनन्द लोक की खोज करने की प्रेरणा होगी। इसके जानकार लोगों से मिलने की तब इच्छा जगेगी। तत्सम्बन्धी सत्संग, ग्रन्थावलोकन आदि साधनों में मन दौड़ेगा।

तीन लोक एवं चौदहों भुवन के ऊपर जितने भी मुक्त लोकों वा आनन्द लोकों का विवरण शास्त्रों में है उनमें तब विश्वास भी पैदा होने लगेगा।

जब शास्वत आनन्द प्राप्त करने की भूख जगी, तब महात्माओं से प्रीति बढ़ी ग्रन्थों के अवलोकन में मन लगा। फलस्वरूप यह स्पष्ट हो जायेगा कि सभी शरीरधारी चाहे वे राजा हों, रङ्क हों, साधु वेषधारी हों वा वेदपाठी ब्राह्मण हों—"पञ्च क्लेशों" से ग्रस्त हैं। ये पञ्चक्लेश हैं:—अस्मिता (मैं हूँ" ऐसा भावना), २—जन्म, ३—वृद्धि—(बढ़ना), ४—ह्रास (क्षीण होने लगना) तथा ५—क्षय (मरण)

सत्संगादि से थोड़ा ज्ञान होने पर सर्वप्रथम इन क्लेशों से मुक्त होने की हार्दिक इच्छा होती है। तब इन क्लेशों के कारण और उनके निराकरण की ओर ध्यान जाता है। इस लोक में तो जीव को "भ्रम" की बीमारी है। अनादि अज्ञान (माया) जनित अन्धकार के कारण वह "रज्जु" (रस्सी) को ही सर्प मान क्लेश पा रहा है। कुछ को और ही कुछ समझता है। सबसे पहला भ्रम यही है कि वह "मैं हूँ" इस असत्य को सत्य मान लेता है। जब जीव ने "मैं हूँ" ऐसा मान लिया तब मेरा क्या है, इसका परिचय वह जन्म के बाद से ही प्राप्त करने लगता है। माता बता देती है कि यह तुम्हारे पिता हैं, चाचा हैं, बाबा हैं आदि तब तक, धन, भवन से नाता लग जाता है। यही मेरा-तेरा में जीव फँस जाता है।

प्रत्येक मृत्यु के अवसर पर यदि जीव यह सोचता कि यदि "मैं हूँ" घर, परिवार, संसार मेरा है, तो इच्छा न रहते हुए भी मुझे मृत्यु क्यों आ जाती है ? प्रिय परिवार संसार से मुझे इच्छा विरुद्ध क्यों अलग कर दिया जाता है, तो पता चलता है कि उसकी अपनी सत्ता कुछ भी नहीं है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। कोई भिन्न सत्ता है जो शरीर में वास कर जीव से कहलाता है "मैं हूँ" मेरा है" आदि। उस जीव के स्वजन सनेही मृत्यु आते ही बोल उठते है कि "फलाना बाबू" चले गए। यदि उनसे प्रश्न किया कि जो बाबू चले गये उनको आपने देखा था, उत्तर क्या मिलेगा ? जन्म होते देखा था बाबू का "बालक शरीर" जाते समय देखा साढ़े तीन हाथ का शरीर। शरीर के अलावे तो किसी ने कुछ और

नहीं देखा। यदि बाबू शरीर होते तो मृत्यु होने पर भी तो शरीर पड़ा ही रहता है। जिस तत्व के शरीर में रहने से "बाबू" जीवित कहे गये, जिनके निकलने से बाबू मर गये ऐसा कहा गया तब शरीर में रहने वाला तो सचमुच वही तत्व प्रधान था जिसको कभी किसी ने नहीं देखा। न आते देखा और न जाते देखा। शरीर में रहकर लीला करने कराने वाला कोई और तत्व है, प्रत्येक मृत्यु में यह सचाई देखने पर भी जीव की मान्यता बनी रहती है "मैं हूँ, मेरा है" आदि, यह भ्रम कैसे जाय ?

विश्व गुरु भगवान शङ्कर ने तो यहाँ तक श्रीरामचरितमानस में कह डाला "भ्रम न सकइ कोउ टार"। तब माता पार्वती ने पूछा कि भ्रम निवारण के लिये जीव क्या करें ? उत्तर मिला"

जासु कृपा यह भ्रम मिटि जाई। गिरजा सोइ कृपाल रघुराई ॥

इस प्रकार यह स्पष्ट होता गया कि अनेकानेक साधनाओं से भ्रम मिटने वाला नहीं है। यह तो कृपा साध्य है, साधन साध्य नहीं है। तब करना क्या है ? एकमात्र मन, वचन, कर्म से श्री रघुनाथजी का बन जाना है। उनका बनते ही वे कृपा करेंगे। विनय पत्रिका में कहा गया "काल कर्म, गुण, स्वभाव सबके शीश तपत"। उक्त चारों के प्रभाव से बचाने वाला श्री रामभद्र जू ही हैं यथा रामायण जी में "काल-कर्म स्वभाव गुण भक्षक" एकमात्र श्री राघवेन्द्र सरकार को ही बताया गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो इसीलिये स्पष्ट शब्दों में जीव का उत्साह बढ़ाते हुए यह कहा—

बिगड़ी जन्म अनेक के बनीहैं अब ही आज।
होहु राम के राम भजु तुलसी तजि कुसमाज ॥

यों तो जीव जगत् के कल्याण हेतु २४ अवतार हुए हैं पर इन अवतारों में दो अवतार ही प्रधान हैं, भगवान् राम और भगवान् कृष्ण। इन अवतारों के लीलाचरणों से, उपदेशों से ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्ग प्रदर्शन हुआ है, तो भी श्रीरामचरितमानस या अन्य ग्रंथों के अनुसार भगवान् शंकर ने श्री रामभद्र जू को ही अपना स्वामी बताया है, ये सदा राम नाम ही रटते रहते हैं "महामन्त्र जो जपत महेशू, काशी मुक्ति हेतु उपदेशू ॥" श्री रामजी का ही मन्त्र तारक मन्त्र कहा जाता है। उसी मन्त्र में स्वयं तार देने की शक्ति है। स्वयं भगवान् कृष्ण ने आदि पुराण में अर्जुन से राम नाम परत्व पर प्रकाश देते हुए कहा है। "गायन्ति राम नामानि वैष्णवाश्च युगे युगे, त्यक्त्वा च सर्व कर्माणि, धर्माणि च कपि ध्वज, राम नामैव नामैव राम नामैव केवलं गतिष्तेषां, गतिस्तेषां गतिस्तेषां सुनिश्चितम्"

श्री रामभद्र जू के परत्व के सम्बन्ध में सर्वत्र कहा गया है कि वे सर्वोपरि हैं, सबों के मूल हैं। "अवतारण पति राम" कोटि सम पालन करता, कोटि रुद्र सम संसंहरता" "शम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना जासु अंश उपजहिँ जग नाना" आदि आदि। उनकी स्वरूप शक्ति श्री सीताजी के विषय में भी यही कहा गया है—

अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणी। जासु अंश उपजहिँ गुण खानी ॥
भृकुटि विलाश जासु जग होई। राम वाम दिशि सीता सोई ॥

इस प्रकार श्री सीतारामजी के तात्विक महत्व को जानकर ही विनयपत्रिका में उन्होंने भगवान् राम से यह कहा—

है श्रुति विदित उपाय, सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरे।
तुलसीदास यह जीव मोह रज्जु, जो बाँध्यो सोई छोड़े ॥

उन्होंने खुले शब्दों में श्री रामभद्र जू से निवेदन किया कि श्रुतियों में धर्म, ग्रन्थों में उल्लि-

खित अनेक देवता देवियों का नाम, उनकी सत्ता प्रभाव आदि को जानता हूँ, वे सब आपके अंश से प्रकट हैं, सभी पूज्य हैं, तो भी जिस रोग से मैं मुक्त होना चाहता हूँ यदि उन अनेकानेक देवताओं के पास जाऊँगा तो रोग मुक्त करने के लिये वे आप ही का सहारा लेंगे। तब मैं अकेला कहाँ-कहाँ भटकता फिरूँ, जब कि काम एक ही जगह जाने से हो जायगा। उन देवताओं को तो आपकी अपेक्षा है, वे आपसे शक्ति पाकर शक्तिशाली बने हैं पर आप तो मूल हैं, सर्वोपरि हैं। जीवों का अन्तिम कल्याण करने में सर्वसमर्थ है। अपने आश्रितों की रक्षा के लिये आप किसी का सहारा नहीं लेते।

जीव जो अनादिकाल से "मोह रज्जु" में बँधा है उस बन्धन से आप ही मुक्त कर सकते हैं क्योंकि यह बन्धन आपका ही बाँधा हुआ है।

उपरोक्त तथ्यों को अध्ययन, मनन, एवं हृदयङ्गम कर लेने पर जब मन यह मान गया कि श्री रघुनाथजी से ही प्रीति कर ली जाय। तब दूसरा प्रश्न है कि कोरी प्रीति की जाय, वा सम्बन्धयुक्त प्रीति की जाय। लोक में तो देखा जाता है कि सम्बंध में अधिकार निहित रहता है। यदि मैं किसी धनी व्यक्ति का पुत्र हो गया तो स्वतः नालायक होने पर भी पिता की सम्पति का अधिकारी बन जाता हूँ। इसी प्रकार औरों नाता में भी कुछ-न-कुछ अधिकार रहता ही है। भगवान् राम तो मर्यादा पोषक अवतार हैं—वे सम्बन्धयुक्त प्रीति को स्वीकार करते हैं। नाता के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा कि जीव के आपके साथ अनेक नाते रहे हैं। कोई आपको पिता माना है, कोई भ्राता, कोई सखा, कोई मित्र आदि। जीव तो "नाबालिग" हैं। हे रघुनाथजी! नाता का चुनाव भी आपही कर दीजिये और उसका निर्वाह भी कर दीजिये। "मोहि, तोहि नातो अनेक, मानिय जो भावे।"

श्री रघुनाथजी ने श्री शबरीजी के आश्रम में इस सम्बन्ध में कहा कि मैं कौन-सा नाता मानता हूँ सो सुन लो—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति के नाता॥

जिसकी शरणागति लेनी है, जिससे नाता जोड़ना है, जब उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वे एक मात्र भक्ति का ही नाता को मानते हैं तब तो अन्य सारे विवाद समाप्त ही हो गये। अब भक्ति क्या है, "का भक्ति? महर्षि पराशर ने उत्तर दिया "सा परानुरक्तिरीश्वरे" ईश्वर में "परा" अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है। यों तो जिज्ञासु, आर्त, अर्थार्थी, एवं ज्ञानी चार प्रकार के भक्तों का वर्णन श्री रामायणजी एवं श्री गीताजी में है। और "ज्ञानी प्रभुहिँ विशेष पियारा" भी कहा गया है। किन्तु श्री रायायणजी में प्रेम प्रधान भक्ति को ही ऊँचा स्थान दिया गया है। अन्य भक्ति ग्रन्थों में भी यही बात पाई जाती है, श्री रामायण जू में तो यहाँ तक कह दिया गया—

राम प्रेम बिनु सोह न ज्ञाना। कर्णधार बिनु जिमि जलयाना॥
योग कुयोग, ज्ञान अज्ञानू। जहाँ न राम प्रेम प्रधानू॥

गुरु वसिष्ठ ने तो और भी जोरदार शब्दों में प्रीति को ही सर्वोपरि बताया—

ज्ञान दया, दम, तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहैं श्रुति सज्जन॥
सम यम, नियम, योग निज धर्मा। श्रुति सम्भव नाना शुभ कर्मा॥
आगम, निगम, पुराण अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तब पद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर फल यह सुन्दर॥

ज्ञान, दया, दम, तीरथ में मज्जन करना, अनेकानेक शुभ कर्म करना, जिनका वर्णन वेद पुराणों में हुआ है, शम, यम, नियम, योगादि साधना, निज धर्म में दृढ़ता, वेद पुराण अनेकानेक शास्त्र उपनिषद

का पठन-पाठन श्रवण यह सब पूरा करना एक तो असम्भव है, यदि उपरोक्त वर्णित सारे-के-सारे शुभ कर्म, धर्म एवं साधनाओं को पूरा भी कर लिया जाय, अनेकानेक वेदादि ग्रंथों का कई बार अवलोकन भी कर लिया जाय पर ऐसा करने के बाद भी श्री रामभद्र जू के पादपद्मों में "निरन्तर प्रीति" नहीं उत्पन्न हुई तब वे सब निष्फल ही हुए, ऐसा माना जायगा।

महर्षि वसिष्ठ ने आगे यह निर्णय दिया—प्रेम भगति जल बिनु रघुराई, अभियंतर मल कबहुँ न जाई।" जब भीतर ही साफ न हुआ, तो बाहरी सफाई से क्या लाभ। इस प्रकार यह तय हो गया कि प्रेमाभक्ति ही मानव जीवन की सर्वोत्कृष्ट साधना है, इसी से प्रभु को रिझाकर परमानन्द की प्राप्ति सम्भव है। इसलिये उपासना का चरमलक्ष्य हुआ प्रेमाभक्ति भाव हृदय में अपनाकर प्रीतम प्रभु की प्राप्ति करना अब यह जानना आवश्यक हो गया कि प्रेमाभक्ति किसे कहते हैं ?

प्रेमाभक्ति का परिचय

भक्त श्री शबरीजी के आश्रम में भगवान् राम ने अपना भाव बताते हुए सांसारिक भक्तों के भाव को भी बताया था। सांसारिक दृष्टिकोण जिनने धारण कर लिया है उनके लिये निजी दुनियाँ, घर, परिवार आदि ही सब कुछ है। वे भगवान् से प्रेम कर यही चाहते हैं कि उन्हें दुनियाँ के भीतर उच्च जाति में जन्म हो, समाज में उनका दर्जा ऊँचा हो, उत्तम कुल में उन्हें उत्पन्न होने का गौरव प्राप्त हो, उनमें धर्माचरण इतना तक हो जाय कि दुनियाँ उन्हें धर्मात्मा जाने और माने। हर प्रकार की बड़ाई उन्हें जीवन में मिले, वे समाज में बड़े कहे जायँ, कुबेर, जैसा धनी हो जायँ वे बड़े बलिष्ठ हों, उनके मित्रों एवं प्रेमियों की संख्या औरों से कहीं ज्यादा हो, वे सब प्रकार से गुणवान् बने रहें, एवं चतुराई में वे चतुर-शिरोमणि तक कहे जायँ। यथा श्री रामायण में—

जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई। धन, बल, परिजन, गुण, चतुराई।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल वारिद देखिए जैसा॥

उपरोक्त दशमुखी कामनाओं को लेकर ही दुनियाँ के लोग भगवान् से प्रेम करना चाहते हैं। उक्त कामनाओं की पूर्ति के लिये भक्ति वा प्रेम भगवान् से करना तो भक्ति नहीं कही जा सकती। भगवान् को प्रसन्न करने के लिये जो भक्ति वा प्रीति की जाय, सचमुच वही भक्ति है। पूर्वोल्लिखित सभी कामनायें तो अपने किये सुकर्मों के फल से भी पूरी हो सकती हैं। पर भगवान् भी सर्वसमर्थ हैं। वे सब कुछ दे सकते हैं, इस नाते उनकी कृपा से भी उन कामनाओं की पूर्ति हो सकती है। ऊपर दस में से किसी एक का भी गौरव जिन्हें प्राप्त होता है वे उसी गौरव की सुरक्षा और तत्तजनित सुख के भोग में ही मस्त हो जाते हैं और अपनी ही पूजा संसार में कराने लगते हैं। भगवान् की ही सर्वत्र पूजा हो, यह भाव उनसे कोसों दूर हो जाता है।

निज को हेतु बनाकर भगवान् से प्रीति करना भक्ति नहीं है। संसार में तो ऊपर दस प्रकार की ख्याति में यदि एक भी ख्याति प्राप्त हो गयी तो लोगों के बीच पूजनीय बन जाना सहल हो जाता है। भगवान् राम कहते हैं कि भक्ति विहीन इस प्रकार के लोग बिना जल वाले मेघ सरीखे हैं। वे भगवान् जैसा लगते हैं पर भगवान् रूपी मेघ के समान वे संसार के कल्याण के लिये बरसते नहीं हैं, किसी पर अकारण कृपा नहीं करते, उनके कर्म और फल अपने में ही सीमित हो जाते हैं। बरसने वाले मेघ को देखने से भी नेत्र को सुख और बरसने पर तो सारे संसार के पोषण-पालन की व्यवस्था हो जाती है। बरसने वाला मेघ वर्षा के बदले वर्षा से लाभान्वित होने वालों से कोई बदला नहीं चाहता। उसका बरसना अपना स्वभाव ही है। बिना बदला लिये जगत् का कल्याण करना यही लक्षण सच्चे भक्तों का है।

भगवान् के तीन लोक चौदह भुवन में एक-से-एक पद हैं। संसार में भी अनेकानेक उपाधियाँ प्राप्त हो सकती हैं, राजपद से देवत्व पद तक की प्राप्ति के लिये प्रेम करना या संसार में सर्वपूजित होने के लिये प्रेम करना भी सच्ची प्रीति नहीं है। यह तो "निज स्वार्थी" से ही प्रीति हुई। उनकी पूर्ति के लिये सर्व-समर्थ भगवान् से उन्हें रीझकर सहायता मात्र ली गयी।

अतएव प्रेमाभक्ति तो उक्त प्रकार की कामनायुक्त भक्ति, प्रीति से सर्वथा भिन्न है। भक्ति तो सरल सुखद मार्ग है इसमें अपने लिये कोई माँग नहीं है। मोक्ष तक की कामना नहीं है। प्यारे प्रभु जहाँ भी रखें, हृदय में उनकी प्रीति बनी रहे, उनकी याद सदा वर्तमान रहे। इतनी कृपा उनकी बनी रहे, इसके साथ ही वे जहाँ भेजें, जो कार्य करायें—चाहें जीव जगत में प्रतिनियुक्त कर कोई सेवा लें या निज लोक में रखकर रूप झाँकी दर्शन एवं सेवा का ही सुयोग प्रदान करें। भक्त ही एक ऐसा भगवान का प्रेमी है जो बिना शर्त के उनसे भक्ति करता है। भक्त ही जमात से भगवान् संसार में नाम, रूप, लीला, धाम, माहात्म्य का प्रचार कराते हैं।

अन्य प्रकार के प्रेमियों में कोई तो मोक्ष ले लेता है, कोई कैवल्य पद प्राप्त कर लेता है, तो वैसे प्रेमी पर उनका सोलह आना अधिकार कहाँ ? उसने जो माँगा भगवान् ने उसे पूरा कर दिया। बाद उससे कैसे दूसरी सेवा वे ले सकेंगे ?

प्रेमाभक्ति प्राप्त भक्तों के लक्षण

श्री रामभद्र ज एवं भगवान् कृष्ण दोनों ही ने अपने वैसे प्रेमियों के लक्षण बताये हैं जिनके वे वशीभूत होते हैं और जिन भक्तों के द्वारा निज प्रीतम प्रभु की प्राप्ति के साथ-साथ चौदहों भुवन में पावन हो जाता है।

भगवान् कृष्ण की श्रीमुख वाणी से श्रीमद्भागवत में—

वाग्गद् गदा द्रवते यस्य चित्तम्
रुदत्य भीक्ष्णां हसति क्वचिच्च
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

वे कहते हैं " मेरे यशगान करने में जिसका वचन गद्गद हो जाता है, चित्त पिघलता रहता है, गला रुँध जाना है, प्रेम मग्न हो वह कभी हँसता है और कभी रोता है, निर्लज्ज होकर वह गाता है, और नाचता है वह तो मेरी भक्ति से परिपूर्ण है। ऐसे हमारे भक्तों से चौदहों भुवन पावन बन जाते हैं।

नाना पुराण वेदादि के सार श्रीरामचरितमानस में श्री रामभद्र ज की श्रीमुख वाणी श्री लखण लाल ज से—

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद गिरा नयन बह नीरा ॥
कामादिक मद दम्भ न जाके। तात निरन्तर वश मैं ताके ॥

श्री रामभद्र जू के भी कहने का भाव यही है कि उनका यशगान करने में प्रेमी भक्त का अंग-अंग पुलकायमान होता रहे और नेत्रों से प्रेमाश्रु बरसते रहें। इस प्रेमावस्था में उस प्रेमी भक्त के कामादि दम्भों का पता तक नहीं रहता। ऐसे भक्तों के श्री रघुनाथजी सदा वशीभूत बने रहते हैं। जैसे-जैसे हृदय में प्रेमा-भक्ति के भावों की वृद्धि होने लगती है, तैसे-तैसे निज के लिये कामना एवं तत्जनित दम्भ, मद आदि के

भाव स्वतः शिथिल पड़ने लग जाते हैं। बहते हुए प्रेम के प्रवाह के कारण कामादि दम्भ, मद सभी लुप्त-
प्ता हो जाते हैं, अकिंचनता, दीनता एवं नम्रतादि दिव्य गुणों का उदय हो जाता है।

यों तो श्री राघवेन्द्र सरकार ने अवतार ग्रहण कर मानव समाज में वर्णाश्रम धर्म का आदर्श प्रस्तुत किया, आदर्श पुत्र, भाई, सखा, मित्र एवं आदर्श शत्रु तक की मर्यादा स्थापित की। आदर्श माता-पिता प्रेम, पति-पत्नी प्रेम, मातृ प्रेम, सास-श्वसुर, प्रेम एवं राजा-प्रजा-प्रेम आदि विभिन्न सम्बन्ध-जनित प्रेमों की मर्यादा बाँधी है। इन सभी क्षेत्रों में प्रेम के विभिन्न स्वरूपों का प्रदर्शन हुआ। इस प्रकार के प्रेमों को तो उन सम्बन्ध भावों के भीतर ही सीमित कर दिया गया। अनन्त प्रेम रस का उदय उपरोक्त क्षेत्रों में नहीं हो पाया।

निज को हेतु बनाकर स्व-सुख की कामना से भक्ति करने वालों में राजपद आदि महत्व पूर्ण उपाधियों की प्राप्ति ही भक्ति का लक्ष्य बनाया। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी राजर्षि, ब्रह्मर्षि, तपस्वी, महात्मा पद, अष्टसिद्धि आदि की प्राप्ति से लेकर देवत्व की प्राप्ति तक ही अपनी भक्ति के फल को कुछ लोगों ने सीमित कर लिया, उसी फल के भोग में तल्लीन हो गए, स्वयं भगवत तुल्य हो विश्व पूजित हो गये पर उन्हें तो भगवान् के पादपद्मों की प्राप्ति नहीं हो पायी और न हो सकती है। इस सम्बन्ध में भगवद् वाक्य स्पष्ट है। जैसी-जैसी कामना रखकर जो भगवान् से प्रीति करता है, उसे उसी कामना की पूर्ति होती है पर भगवान् नहीं मिलते, यथा गीता में—

देवव्रता यान्ति देवान् पितृण यान्ति पितृव्रता।
भूतानि यान्ति भुतेज्या यान्ति मध्या जिनोपिमाम्॥

मिथिला धाम छोड़कर श्री रामावतार के दूसरे लीला स्थलों में 'निर्मल प्रेम' 'निरन्तर प्रेम' के नमूने छिट-फुट ही मिलते हैं। इन छिट-फुट नमूनों में दो के प्रेम लक्षणों का वर्णन नहीं भुलाया जा सकता। इनमें प्रथम हैं श्री भरतलाल जू। यथा श्रीरामचरितमानस में—

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर, मंजु, मुद, मंगल करनू॥
पुलक गात, हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥

दूसरे प्रेमी हैं प्रेमा भक्ति रूप श्री सुतीक्ष्णजी महाराज यथा श्रीरामचरित्रमानस में—

निर्मल प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइसो दशा भवानी॥
दिशि अरु विदिशि पंथ नहिँ सूझा। को मैं चला कहाँ नहिँ बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुण गाई॥
अविरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखे तरु ओर लुकाई॥

पूर्वोल्लिखित 'निरन्तर प्रेम' 'अघट प्रेम' का बीज मानव हृदय में पड़ा हुआ है। उसे ही विकसित वा जागरित करना मानव जीवन का लक्ष्य है। सांसारिक प्रेम तो घटते-बढ़ते रहते हैं। यहाँ तो यदि आपने कभी किसी को खूब खिलाया-पिलाया एवं स्वागत किया तो महान प्रेमी होने का प्रमाणपत्र तुरन्त मिल गया। दूसरे अवसर पर उसी सज्जन के सत्कार में किसी कारणवश कुछ कमी आ गयी तो पूर्व प्रमाण-पत्र वापस कर लिया गया और आपको 'प्रेम विहीन' होने की उपाधि मिली।

प्रेम यहाँ व्यवसाय है, लेन देन आधार।
कारण कारज मिटत ही, प्रेम होत निस्सार॥

श्री महात्मा कबीर ने 'अघट प्रेम' की परिभाषा बतायी 'छिन ही चढ़े, छिन उतरे, सो तो प्रेम न हो। अघट प्रेम पिंजर बसे, प्रेम कहा वे सोय।'

भीतरी 'अघट' प्रेम को बाहरी प्रेमाचरण से ही जगाया जा सकता है, जैसे काष्ठ के भीतर की आग को बाहर से आग की चिनगारी से ही प्रकट की जा सकती है। अन्तर प्रेम बाहरी प्रेमाचरणों से जगता है। अन्तर प्रेम जगने पर निम्नलिखित लक्षणों का उदय होता है—

अन्तर प्रेम उमंग तन, रोम कण्ठ भरी होय।
विह्वलता जल नयन में, प्रेम कहावे सोय॥

महात्मा कबीर ने भी मानव शरीर धारण करने का यही लक्ष्य बताया—

घट घट में पीव वसतु है, सूनी सेज न कोय।
वा घट की बलिहारी है, जा घट प्रकट होय॥

घट (शरीर) में बसने वाले, प्रिय प्रभु को प्रगट करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। भगवान् शंकर ने बताया कि वे तो एकमात्र प्रेम से ही प्रकट हो सकते हैं। अन्य किसी साधनाओं से नहीं—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होइ मैं जाना॥
अग जगमय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रकट होइ जिमि आगी॥

प्रेम लक्षणा भक्ति का बाहर से संस्पर्श होते ही आन्तरिक प्रेम की बाढ़ आ जाती है। एक में प्रेम पैदा होने से अनेकों प्रेमी बन जाते हैं। जिस भाव से और जैसे भाव से प्रेम किया जाता है वैसे ही भावों के अनुकूल भगवान् रूप धारण कर अपने प्रेमी को दर्शन देकर आनन्द प्रदान करते हैं।

मिथिला भाव—मिथिला भाव से तात्पर्य है मिथिला निवासियों का सियास्वामिनी एवं उनके प्राण प्रीतम श्री रामभद्रजू के प्रति भाव। इसे जानने के लिये पावन मिथिला नगरी का स्व-स्वरूप जानना आवश्यक है। श्री सियास्वामिनी जू के साथ समग्र मिथिला का वही संबंध है जैसा कि शरीर के सभी अंगों का शरीर में रहने वाले के साथ होता है। अंगी अंग का सम्बन्ध प्रत्यक्ष है अंगी की मति-गति, शक्ति एवं स्वभाव ही प्रत्येक अंग की मति, गति एवं शक्ति है, अंगी का स्वभाव ही प्रत्येक अंग का स्वभाव हो जाता है। शरीरधारी के अनुसार ही प्रत्येक अंग कार्य करते हैं। शरीर के अंगों का एकमात्र शरीरधारी की वृत्ति के अनुसार शरीरधारी के लिये ही होते हैं। यहाँ अंगी को प्रसन्न रखना ही प्रत्येक अंग की स्वाभाविक वृत्ति है। अंगी से प्रेरित होकर ही उसके इच्छानुसार पैर चलते हैं, हाथ सभी अंगों की आवश्यकतानुसार सेवा करते हुए कर्म क्षेत्र के अन्य कार्यों को करते हैं जिससे अंगी को प्रसन्नता हो। नेत्र उन्हीं वस्तुओं को देखते हैं, जिसे देखना अंगी चाहता है, वाणी अंगी के अनुकूल ही मुखरित होती है, कान सुनते हैं तथा सभी अंग नियुक्ति के अनुसार सेवा कार्य करते हैं। स्वभावानुसार, समयानुकूल कार्य होते रहते हैं। किसी अंग को कोई प्रति-फल की न कामना है, न आशा है। अंगी की प्रसन्नता के लिये ही प्रत्येक अंग कार्य करते हैं। सारी मिथिलापुरी ही इस प्रकार सियास्वामिनी जू के ही अनेकानेक अंगों के साकार रूप हैं, कारण कार्यवश अंगों के नाम रूप, गुण, स्वभाव भिन्न दीख पड़ते हैं पर सभी अंगी से ही प्रेरित अंगी के अनुकूल ही आचरण करते हैं। श्री सिया जू के अंग प्रत्यंगों के साकार रूप दूब घास से लेकर पुष्प-वाटिका, बाग-वन, महल, अट्टालिका, शृंगार, सजावट, ताल, तलैया, भ्रमर, पक्षी, कोकिल, मयूर आदि हैं। आवश्यकता मार्यादित रूप से मर्यादा लोक के अनुसार कहने को वे जड़ रूप में हैं पर सभी चैतन्य हैं।

नुसार स्वामिनी की प्रसन्नता के लिये वे सब कुछ बनने में, और करने में समर्थ हैं। लोटा, थाली, गिलास, कटोरा आदि सब कुछ ये ही हैं। मानो गुप्त रूप से भूतल पर ही साकेत उतर आया है।

मर्यादा लोक में पूर्व नियोजित लीला करने के लिये सियास्वामिनी जू जनकपुर में प्रकट हुई हैं और प्राणवल्लभ प्राण-प्राणेश्वर राज-राजेश्वर श्रीरामभद्र जू कौशिल्यानन्दन बनकर श्री अवध में बाल-लीला का सुख दे रहे हैं। अवतार की सारी लीलायें निमित्त की ओट में ही होती हैं। इसलिये यहाँ की लीला को नैमित्तिक लीला कहा जाता है। लीलायें अवसर में अनुकूल ही होती हैं। अतएव प्रीतम से मिलने के अवसर का मिथिला में इन्तजार है। प्रीतम के स्वागत की तैयारी का पता तो मिथिला दर्शन ही से लगाया जा सकता है। यहाँ की सारी सजावट में मिथिलावासियों का पूर्ण प्रेम ही साकार बना है। सारी मिथिला नगरी ही दुलहिन के रूप में सजायी गयी है। श्री सिया जू द्वारा मिथिला आह्लादिनी रूप में ही सारी सजावट, सारा शृंगार, नगर, गली, बाग, बगीचा, वन उपवन, ताल सरोवर, सरिता, पशु, पक्षी आदि की हुई, जिससे प्रीतम को एक-एक चीज के दर्शन में सियास्वामिनी की ही झाँकी मिल सके, प्रति-क्षण उन्हें आन्तरिक आह्लाद की प्राप्ति होती रहे। इस प्रकार सारे मिथिलावासियों के एक-एक कर्म, समग्रभाव स्वामिनीजी की प्रसन्नता के लिये अर्पित होते रहें। पर श्री सिया स्वामिनी जू तो मिथिला की सारी सेवायें, सारी क्रियायें प्राणवल्लभ की ही प्रसन्नता के लिये करती कराती हैं। वे आह्लादिनी हैं, हर प्रकार से प्रीतम को आह्लाद देना उनका सहज स्वभाव है। प्राणवल्लभ श्री रामभद्र जू भी सारी बातें जान रहे हैं। हृदय में शीघ्र मिथिला आने की भूख है, तड़प है, पर अकारण बिना माता-पिता की आज्ञा के कैसे चल पड़ते ? किसी बहाने के इन्तजार में वे भी माँ-बाप के घर खेल-कूद रहे हैं। उनकी प्राप्ति के लिये यहाँ गिरिजा पूजन चल रहा है। यह भी लोक मर्यादा के अनुकूल ही है। यह लोक तो श्री विष्णु भगवान् आदि त्रिदेवा का है। यहाँ के विधान को मानते हुए ही लीला करनी है। लोक में नियम बना हुआ है कि यदि अनुकूल पति चाहे तो माँ पार्वती के पूजन एवं प्रसन्नता से सम्भव है। उसी लोक विधान को स्वयं श्री किशोरीजी मानकर प्रीतम राम की प्राप्ति चाहती हैं।

सिया स्वामिनी जू कैसे प्रसन्न रहें, यही भाव सारे मिथिला निवासियों के हैं, अपनी प्रसन्नता की वहाँ कोई कामना ही नहीं है। उसी प्रकार सियास्वामिनी जू की एकमात्र कामना है अपने प्रीतम को आह्लाद देना, नित आनन्द देना, उन्हें भी भीतर में अपने लिये कोई कामना नहीं है। प्रीतम प्रसन्न होकर अपनी ओर से चाहे जो सुख दें वही स्वीकार है। अपनी ओर से कोई माँग नहीं है। इस प्रकार सिया-स्वामिनी जू के द्वारा ही मिथिलावासियों की सारी सेवायें, सारी क्रियायें श्री रामभद्र जू को अर्पित हुईं। अतएव मिथिलाजी में ही एकमात्र प्रेम की लीला हुई। मिथिलावासियों के साथ-साथ सिया जू ने पूर्ण प्रेम अपने प्रीतम को अर्पित किया। पूर्ण प्रेम की लीला श्री रामावतार में एकमात्र मिथिला में ही हुई। अतएव मिथिला प्रेम नगरी है, और उसके सच्चे प्रेमी श्री रामभद्र जू हैं। पूर्ण प्रेम के सभी अङ्ग यहीं साकार दीख पड़ते हैं। जिस प्रकार कृष्णोपासकों का प्रेमधाम श्री वृन्दावन है, प्रेमियों का वही प्राण है। वही गोलोक भी है। उसी प्रकार रामोपासकों का प्राण श्री मिथिला धाम है। मिथिला में मर्यादित स्वकीया भाव से प्रेमलीला हुई तो वृन्दावन में लोक मर्यादा की परवाह न कर परकीया भाव से प्रेम लीला हुई। यहाँ सारे भौतिक मर्याद तोड़ दिये गये पर मिथिला में जगत् मर्यादा का भी बचाव किया गया। मिथिला-वासियों ने कभी ऐसा भान नहीं लाया कि श्री रामभद्र जू भूमण्डल के एकमात्र राजा चक्रवर्ती दशरथ जू के राजकुमार हैं, वा ब्रह्मांडनायक हैं। सुबाहु आदि के बध, अहिल्या उद्धार की बातें तो कानों तक आयीं पर इस कान से वे बातें आयीं और उस कान से निकल गयीं। रामायणजी में स्पष्ट है—

जनक जाति अवलोकहिँ कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिँ जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहिँ रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी॥

निज भावानुकूल ही लोगों ने देखा और रामरूप का दर्शन पाया। परन्तु—

रामहिँ चितय भायँ जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिँ कथनीया॥

जैसा स्वामिनी जी का भाव, वैसा ही उनके अङ्ग का भाव।

मिथिला भाव दोहावली

मैथिली मिथिला प्राण हैं, तव वश राम सुजान।
यहि नाते आये "नवल" बन मिथिला मेहमान॥
अलियन की सर्वेश्वरी, प्राणनाथ के प्राण।
जनक लड़ैती लालजू, प्रेमिन जीवन जान॥
प्रेम कुञ्ज सखियाँ सुमन, विहँसत सहित उल्लास।
सिय आभा इन सुमन में, तिन महँ सिया सुवास॥
इन कुञ्जन विहरत सदा, प्रेमी दशरथ लाल।
अलि सौरभ नित घ्राण करि, प्यारे होत निहाल॥
अलि-कुसुमन में बसि रही, मधुमय सिया-पराग।
कुसुमन ते मधु चयन करि, ललन पगे अनुराग॥
अङ्गी सिय अलि अंग है, अँगी अंग इक संग।
अंगी अंग अभिन्न हैं, सदा अभेद अभंग॥
प्रीतम के आह्लाद हित, एक अनेक ह्वै जाय।
समुझि परै सद्गुरु कृपा, मन नहिँ बुद्धि समाय॥
अंगी प्रेरित गति मति, सकल अंग की होय।
अंगी के अनुकूल ही, लीला करे सब कोय॥
प्रीतम सदा शृँगार रूप, सिय शोभा सुप्रकाश।
बिनु शोभा सुप्रकाश के, शृङ्गार नहीं दरशाय॥
जो चाहो प्रीतम दरश, तन मन सिय पग होय।
लली कृपा दृष्टी मिले, दरशन पिय को होय॥

प्रेम तो बिना कोई सांसारिक सम्बन्ध किये भी किया जा सकता है। कोई प्रेमी किसी प्रेमिका से माता-पिता की परवाह न कर पारिवारिक मर्यादा भङ्ग कर भी समाज से हटकर प्रेम बन्धन कर सकता है। आशिक मासूक राजी तो दुनियाँ क्या करेगी? "सीरी फरहाद" "लैला, मजनू" आदि की प्रेम लीलायें जीव जगत् में अविवाहित रूप में ही हुईं। पर यहाँ तो मर्यादा पुरुषोत्तम का अवतार है। यदि

लोक मर्यादा रखते हुए सियास्वामिनी से प्रेम करना है तो बिना दुलहा बने उनसे प्रेम सम्बन्ध करना सम्भव ही नहीं था। चौबीसों अवतारों में से तो विवाह का आदर्श केवल रामावतार में ही प्रस्तुत हुआ। अतएव प्रेमी श्री रामभद्र जू को दुलहा बनना पड़ा। प्रेम के लिये तो सर्वस्व त्याग करना पड़ता है। यहाँ तो प्रेमी श्री रामभद्र जू को प्रेमी न कहाकर दुलहा कहाना पड़ा, वही वेष-भूषा मर्यादा के नाते धारण करना पड़ा। इसमें तो और भी उनका सुख बढ़ ही गया। प्रेम तो चुपके-चुपके भी किया जा सकता था पर इस रूप में उन्हें देखकर तीनों लोक, चौदहों भुवन के लोग निहाल हो गये। सारे ब्रह्मांड का "अतिहित" हुआ। आनन्द की इतनी काफी वर्षा हुई कि सारे लोकों में प्रवाहित हो गयी। इसी रूप में परमानन्द की लीला उन्होंने की मर्यादित रूप में प्रेम प्रदर्शन बारात से विवाह मण्डप तक हुआ। स्वच्छन्द नित-नूतन प्रेम का दिग्दर्शन तो कोहबर में ही हुआ। मर्यादित रूप में प्रकट होने पर भी श्री रामरूप तो निरावरण ही प्रकट हुआ। मिथिला में पूर्ण प्रेम अर्पित हुआ तो यहाँ आवरण युक्त प्रकट होना कपट हो जाता है। अतएव पूर्णरूपेण रूप माधुरी बरसायी गयी। वृन्दावन की गलियों, कुञ्जों में जो लीला हुई वह विवाह अवसर पर मिथिला के "कोहबर प्रांगण" में ही हुई।

मिथिला भाव की विशेषता—

मिथिलावासियों ने जिन भावों को अपना कर श्री रामभद्र जू से प्रेम किया उसका बदला लेने के लिये प्रीतम श्री रामभद्रजी के पास कुछ दिखायी नहीं पड़ा। मिथिला प्रेम की तुलना में उनके कोटि-कोटि ब्रह्मांड का ऐश्वर्य भी फीका लगा। इसलिये मिथिला प्रेम के बदले में उन्होंने मन, वचन, कर्म से अपने को ही दान किया तो भी उन्हें सन्तुष्टि नहीं होती थी। सदा सोचते रहते थे कि क्या देकर मिथिला प्रेमियों को प्रसन्न रखूँ।

पूर्ण प्रेम अर्पण करने के कारण मिथिलावासियों ने जिस निवारण एवं उपाधि विहीन मूल "रूप-सौन्दर्य" का दर्शन किया, जिस रूप सुधा का पान किया वह अवतारी लीला के किसी अन्य स्थल पर किसी प्रेमी भक्त को उपलब्ध नहीं हो सका। मिथिला छोड़कर अन्य सभी स्थलों में आवरणयुक्त एवं उपाधियुक्त होकर ही लीलायें करनी पड़ीं, यत्र-तत्र भक्तों, प्रेमियों को भी उसी रूप में दर्शन देना पड़ा। प्रेम नगरी तो एकमात्र मिथिलाजी ही हैं अतएव पूर्ण प्रेमी रूप को प्रकट कर मिथिला में ही प्रेम लीला हुई। मिथिला भाव अपनाकर श्री रामभद्र जू से प्रेम करने वालों को वही निरावरण, निरुपाधि श्री रामभद्र जू के प्रेमी रूप का दर्शन होगा। अन्य भाव से प्रेम करने में निरावरण रूप का दर्शन सम्भव नहीं है। प्रेम की उच्चतम दशा तक पहुँचने की पढ़ाई मिथिला में ही हुई, अतएव बिना मिथिला भाव अपनाये इसकी प्राप्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं। इस प्रेम प्रणाली की शिक्षा दुलहा-दुलहिन वेष में धारण कर दी गयी, अतएव अपने इष्टदेव का ध्यान दुलहा-दुलहिन रूप में ही श्रेयस्कर है। उसी रूप ध्यान से आनन्द की वर्षा होती है।

श्रीरामचरितमानस में वर्णित मिथिला भाव एवं मिथिला नगरी की झाँकी

मिथिलावासियों के भाव का पता तो उन्हीं की वाणी से लगता है। गलियों में चलते हुए जैसे ही युवतियों ने श्री रामभद्र जू का रूप जादूगर जैसा देखा तो किसी के हृदय में यह अरमान अंकुरित न हुआ कि उनसे हमारा ही प्रेम सम्बन्ध हो जाय। सबों ने कामना व्यक्त की कि और देवताओं से प्रार्थना तक की कि ऐसा सुन्दर दुलहा श्री किशोरीजी को ही मिले। यह भाव अलौकिक है। "तत् सुख प्रधान" की भावना से ओत-प्रोत है। अपनी कृपा से प्रीतम जो सुख दे दें। "स्वसुख कृपालब्ध।" साधारण वृत्ति

सुन्दर पुरुष को देखकर युवतियों में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि ऐसे सुन्दर किशोर से किसी प्रकार मेरा ही सम्बन्ध होता तो अहोभाग्य ।

युवतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिँ राम रूप अनुरागीं ॥
सुर, नर, असुर, नाग, मुनि माहीं। शोभा असि कहिँ सुनि अति नाहीं ॥
अपर देव अस कोउ न आही। यह छवि सखि पटतरिय जाही ॥

वय किशोर सुषमा सदन, श्याम गौर सुख धाम ।
अंग-अंग पर वारि अहिँ, कोटि-कोटि शत काम ॥

कहहुँ सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी ॥
देखि राम छवि कोउ एक कहई। जोग जान किहि यह वर अहई ॥
जो सखि इनहिँ देखि नर नाहू। पन परिहरि हठि करइ विवाहू ॥
कोउ कह जो भल अहइ विधाता। सब कहु सुनिअ उचित फलदाता
तौ जानकिहिँ मिलहिँ वर ऐहू। नाहिन अलि इच्छा सन्देहू ॥
सखि हमरे आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिँ एहि नातें ॥
बोली अपर कहेउ सखि नीका। एहि विवाह अति हित सब हीका ॥
जिहि विरञ्चि रचि सीय सँवारी। तेहि श्यामल वर रचेउ विचारी ॥

हिय हरषहिँ बरसहिँ सुमन, सुमुखि सुलोचनि बृन्द ।
जाहि जहाँ जहँ बन्धु दोउ, तहँ-तहँ परमानन्द ॥

सखियों ने परस्पर बातचीत में यह निर्णय किया कि कोई भी शरीरधारी ऐसा नहीं जो इस रूप पर न मोह गया हो। ऐसा रूप न मानवलोक में देखा, सुना गया, न देवलोक में और न पाताल लोक (नागलोक) में। यह रूप अलौकिक है। तो भी ऐसा अलौकिक रूपधारी दुलहा सिय स्वामिनी को ही मिले यही हार्दिक अरमान सबों की है। छतों से नगर भ्रमण में जाते समय प्रेमी दशरथलाल पर पुष्पों की वर्षा की जा रही है। इस प्रकार इस अलौकिक छवि के प्रति मिथिलावासियों का भाव भी अलौकिक है। सीताजी से सम्बन्ध होने पर ये आते जाते रहेंगे, इसी नाते दर्शन मिलेगा--यही मिथिलावासियों की कामना है।

मिथिला नगर की झाँकी भी अलौकिक

पुरी रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत विशेषी ॥

श्रीराम राम ने नगर दर्शन में क्या-क्या देखा ?

वापी, कूप, सरित सर नाना। सलिल सुधा सम मनिन सोपाना ॥
गुञ्जत मंजु मत्त रस भृङ्गा। कूँजत कल बहु बरन बिहंगा ॥
बरन-बरन बिकसे वन जाता। त्रिविध समीर सदा सुख दाता ॥

सुमन वाटिका बाग वन, विपुल विहङ्ग निवास ।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास ॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइ लोभाई ॥

नगर के बाहर चतुर्दिक, कूएँ, बावली, नदी, तथा अनेकानेक तालाब हैं जिनमें मणिमय सीढ़ियाँ बनी हैं और जल तो मानों अमृत के समान ही मीठा है। उनमें तरह-तरह के जलकमल खिले हैं जिन पर

मत्त भ्रमर एवं जलपक्षी गुञ्जायमान कर रहे हैं। नगर के चारों ओर मणिमण्डित मार्गों की रचना है, मार्ग के दोनों ओर पहले विभिन्न प्रकार के सुमन की क्यारियाँ हैं, बाद छोटे-छोटे किशोर अवस्था के नाना भाँति के पौधों के बगीचे हैं—उसके बाद विशाल गाछों की कतारें हैं जो मनोरम वन के सदृश शोभायमान हैं। उन पर नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे हैं और भौंरे गूँज रहे हैं। सारा जनकपुर कुञ्जों से आवेष्ठित है। इस प्रकार चतुर्दिक मन मोह रहता है। उस समय फूल खिल रहे हैं, नव पल्लव वृक्षों में लग रहे हैं और सुन्दर फल भी वृक्षों में लटक रहे हैं।

कहा जाता है मिथिला में प्रथम आगमन श्री रामभद्र जू का शरदकाल में ही हुआ। पर वन वाटिका में बसन्त ऋतु की झाँकी वर्तमान है। सारी प्रकृति ही वासन्ती शृंगार किये प्रीतम का स्वागत कर रही है। यह प्राकृतिक झाँकी सर्वथा अलौकिक है।

महल अट्टालिकाओं की ऐश्वर्य भरी रचना भी अलौकिक

धनिक वनिक वर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लै नाना॥
चौहट सुन्दर गली सुहाई। सन्तत रहहिँ सुगन्ध सिँचाई॥
मङ्गलमय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रति नाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सुभग सुचि सन्ता। धरम शील ज्ञानी गुणवन्ता॥
अति अनूप जहँ जनक निवासू। विथकहिँ विबुध विलोकि विलासू॥
होत चकित चित कोटि विलोकी। सकल भुवन शोभा जनु रोकी॥

जगह-जगह पर चौराहे, मणिमय मार्ग, सदा सुगन्धी से सिंचित, महल की ऊँचाई एवं परकोटों को देखकर मानव की कौन कहें, देवता भी चकित हो जाते हैं। मानो समस्त लोकों की शोभा को इन महल अट्टालिकाओं ने रोक रखी है।

अन्तःपुर किशोरी बाग की शोभा भी अलौकिक

भूप बाग वर देखेउ जाई। जहँ बन्सत ऋतु रही लुभाई॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज सम्पति सुर रूख लजाये॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा॥

बाग तड़ाग विलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यहु, जो रामहि सुखदेत॥

शरद ऋतु में बसन्त आकर बैठ गयी। मिथिला की वासन्ती प्रकृति, छवि देखकर वह कहाँ जाय? चातक, कोकिल, सुग्गा, चकोर और मोर ये सब-के-सब प्रेममार्गी हैं। वर्ष की भिन्न-भिन्न ऋतु में ही इनकी प्रधानता है पर ये सब-के-सब शरदकाल में ही आकर मिथिला की कुञ्जों में बैठे हैं। क्योंकि सारे प्रेम के शिर मोर प्रेमिन सरदार प्रीतम श्री रामभद्र जू का स्वागत जो करना है। ऋतुकाल का यहाँ बन्धन कहाँ? सर्वत्र वासन्ती शोभा है। यह भी अलौकिक है। अलौकिक प्रेमी के स्वागतार्थ सारी सजावट, सारा शृंगार सारी प्रकृति अलौकिक रूप को ही धारण किये है। मिथिलापुरी की अद्भुत रचना, शृंगार सजावट देखकर "विधिहिँ भयउ आश्चर्य विशेषी, निज करनी कतहूँ नहिँ देखी।" यह लौकिक रचना थी ही नहीं, अन्यथा ब्रह्माजी को आश्चर्य कैसे होता? लोक रचना तो वे ही करते हैं। रचना तो निज प्रीतम की एकमात्र प्रेमिका सीताजी द्वारा की गयी, और कराई गई है। अतएव अलौकिक है। प्रीतम भी अलौकिक हैं अतएव उनके स्वागतार्थ रचना भी अलौकिक है।

अखिल ब्रह्माण्डनायक श्री चक्रवर्ती दशरथ राजकुमार रामभद्र जू का मिथिला आगमन पाँव पयादे केवल एक प्रेमी रूप में

रहस्य ग्रन्थों में कहीं ऐसा उल्लेख है कि जब मृत्यु भुवन में अवतारी लीला करने श्री रामभद्र जू आए तब कहाँ-कहाँ, क्या और कितनी लीला होनी है इसकी यादगारी कराने का भार स्वयं श्री किशोरी जी को ही रहता है। श्री लीलादेवी भी किशोरीजी ही बनती हैं जिनका स्थान सूक्ष्म रूप में श्री राघवेन्द्र सरकार के भौंह पर है। प्रधानतः अवतारी लीलायें तो विवाह के बाद ही हुईं। लोक मर्यादा के अनुसार शक्ति-पुरुष मिथिला में ही संयुक्त हुए तब आगे की लीलायें हो पायीं। एकाकी लीला तो श्री राघवेन्द्र सरकार को करना नहीं था। प्रति लीला के उपयुक्त आवरण देकर लीला कराना भी सिया स्वामिनी जी की ही जिम्मेवारी थी। बाल लीला का समय बीत चला था। यहाँ स्वागत की सारी तैयारी पूर्व उल्लिखित विवरणों के अनुरूप पूरी हो चुकी थी। अब प्रेम-लीला का अवसर आ चला था और वे वहाँ श्री चक्रवर्ती महाराज के आँगन में खेल-कूद में मस्त थे। उस लीला का सुख श्री काकभुसुण्डीजी और भगवान शङ्कर पक्षी रूप में छत पर बैठे-बैठे लिया करते थे। जहाँ श्री किशोरीजी से प्रधान सखियों ने कहा कि जब तक उन्हें स्मरण नहीं कराया जायेगा, वे समझेंगे कि प्रेम-लीला में अभी देर है। श्री किशोरीजी की सम्मति पाकर दो सखियाँ सुग्गा वेष में श्री अवध पधार कर छत के ऊपर श्री रामभद्र जू के आमने-सामने बैठ गयीं। आँगन में खेलते हुए जैसे इनकी दृष्टि उन सुग्गों के ऊपर पड़ी, यहाँ का सारा सुख भुला गया। मिथिला की बोलाहट जानकर तो मुख म्लान हो गया। विश्वगुरु भगवान शङ्कर ने ध्यानपूर्वक सोचा तो सारा रहस्य समझ में आ गया। यह मर्यादा का अवतार है। श्री राघवेन्द्र सरकार को मिथिला जाने का कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा? भगवान शङ्कर श्री विश्वामित्रजी के पास दौड़ पड़े। उन्होंने कहा— "राक्षसों का उपद्रव क्यों सहन कर रहे हो? श्री अवध में तो अब वे बाहर जाकर सन्त सेवादि करने योग्य हो गये। श्री अवध जाकर श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई को माँग लाओ" तब रामचरित मानस की यह चौपाई लागू हुई—

गाधि तनय मन चिन्ता व्यापी। बिनु हरि मरहिँ न निशिचर पापी॥

श्री अवध से निकल भागने का विश्वामित्र जी की चिन्ता ही कारण बन गया।

महामुनि श्री विश्वामित्र जी श्री अवध आए और उचित सेवा स्वागत के बाद उन्होंने श्री चक्रवर्ती महाराज से कहा—"अनुज समेत देउ रघुनाथा, निशिचर बध मैं होव सनाथा।"

श्री वशिष्ठजी के बहुत समझाने पर दशरथ महाराज ने श्री राम-लषण को विश्वामित्र को अर्पण यह कहते हुए किया—

मेरे प्राण नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिँ कोऊ॥

विश्वामित्र के आश्रम आकर सुबाहु आदि राक्षस समूह का कुछ ही दिनों में नाश कर दिया गया। निर्भय होकर महात्माओं के यज्ञादि कर्म होने लगे। यहाँ कार्य जल्दी-जल्दी किया गया, ध्यान मिथिला का था।

निशिचर वध तो हो चुका, इतने ही कार्य के लिये श्री विश्वामित्रजी दोनों भाइयों को माँग लाये थे। अतएव उचित तो यही था कि उन्हें श्री अवध लौटा दिया जाता। पर मन-मोहन के प्रभाव से विश्वामित्र जी भी लोक मर्याद भूल गये। एक दिन उन्होंने यह प्रस्ताव श्री रामभद्र जू के सामने रख दिया

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुष यज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा॥